CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.2 2849

2-८6-८

ॐ

ब्रह्मचारी लक्ष्मीचंद जी वर्णी द्वारा संग्रहीत

परम अध्यात्म मार्तण्ड

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर जी महाराज
के कर कमलों में सादर समर्पित

प्रकाशक :—

(विद्याभूषण ब्र०) मोतीलाल काशलीवाल
वर्तमान निवास पहाड़ी धीरज देहली

प्रथमावृत्ति १०००

फाल्गुन वदी ८
वी० सं० २४७८
वि० सं० २००८

मूल्य स्वाध्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या......................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम परम अध्यात्म मार्तण्ड

लेखक ब्र० लक्ष्मीचन्द जी वर्णी

लेनेवाले का	देनेकी	लेनेवालेका	लौटानेकी तिथि

चंद जी ने
कलश के
सार ग्रंथ
पुरुषों के
विवेचन
चिक्य में
और
ाकर
लिये
ादन
हुये।
है।
ास
ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय निर्ग्रन्थ दि० जैनाचार्य पूज्यपाद
१०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज
चतुर्मास पहाड़ी धीरज देहली सं० २००८

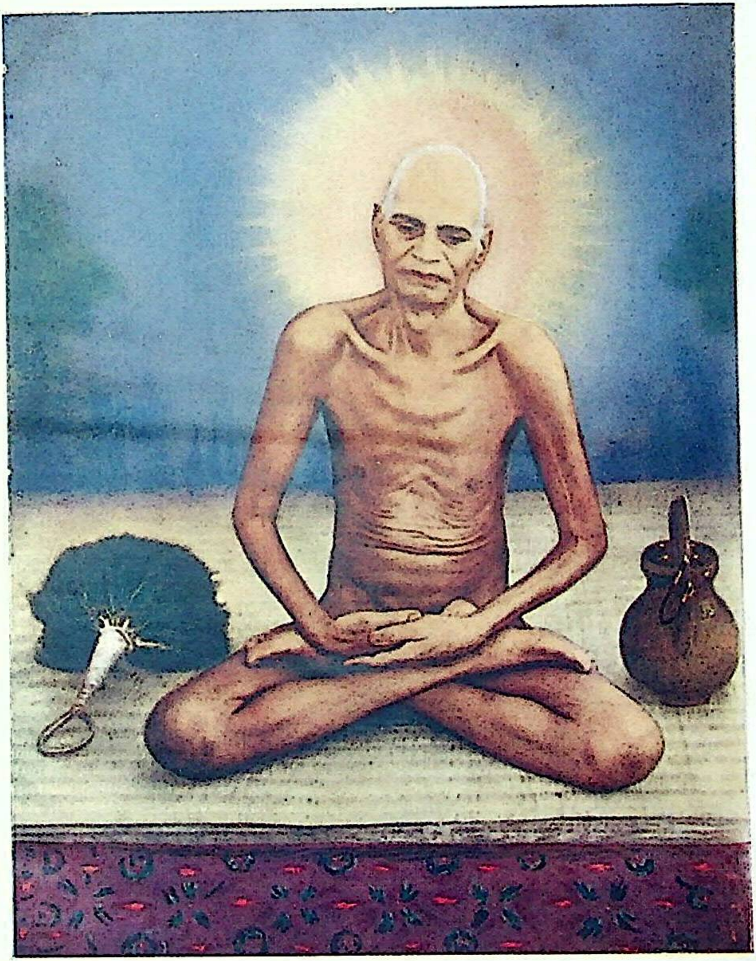

जन्मदिवस कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९४० ग्राम प्रेमसर (गवालियर)
ऐलक दीक्षा आसोज सुदी ६ सं० १९८१ इन्दौर (मालवा)
मुनिदीक्षा मगसिर वदी ११ सं० १९८१ हाटपीपल्या (गवालियर)
आचार्यपद ग्राम [illegible] शुक्ला [illegible] सं० [illegible] [illegible] ([illegible])

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८६४

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

आचार्य श्री १०८ सूर्यसागराय नमः

परम अध्यात्म मार्तण्ड

(अनुष्टुप)

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकाशते ।
चित्स्वभावायभावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्वानुभूत्या चकाशते) अपनी अनुभूति के द्वारा प्रकाशमान (चित्स्वभावाय) चैतन्य स्वभाव वाले (भावाय) सत्स्वरूप (सर्वभावान्तरच्छिदे) अपने को छोड़कर सर्व पदार्थों को एक काल में जानने वाले ऐसे (समयसाराय नमः अस्तु) द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म से रहित शुद्ध आत्मा के लिये नमस्कार हो ॥१॥

(अनुष्टुप)

अनंतधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्तीप्रथगात्मनः ।
अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(अनन्तधर्मणः आत्मनः) अनन्तधर्म वाली आत्माके (तत्वंप्रथक्पश्यन्ती) स्वरूप को प्रथक् देखने वाली (अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव) अनेक हैं धर्म जिसमें ऐसी मूर्ति हमेशा ही (प्रकाशताम्) प्रकाशमान हो ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा—
दविरतमनुभाव्य व्याप्ति कल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते—
र्भवतु समयसार व्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

अन्वयार्थ—(परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावात्) पर परिणति का कारण जो मोहनामा कर्म उसके उदय से (अविरत मनुभाव्य व्याप्ति कल्माषितायाः) निरन्तर रागादिक की व्याप्ति से मैली (शुद्धचिन्मात्रमूर्त्तेः) शुद्ध चैतन्यमात्रमूर्तिकी (अनुभूतेः) अनुभूतिसे (समयसारव्याख्यया) समयसार की व्याख्या से (ममएव) मेरी ही (परमविशुद्धिःभवतु) परम विशुद्धि हो ॥३॥

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके ।
जिनवचसि रमंते ये स्वयंवान्तमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परम ज्योतिरुच्चै
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्तएव ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(उभयनयविरोधध्वंसिनिस्यात्पदांके) जो दोनों नयों के विरोध को नाश करने वाली स्यातपदसेअंकित (जिनवचसिरमन्ते) जिनेन्द्र भगवान्के वचनों में लीन रहते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स्वयं वान्तमोहाः) और स्वयं वीत गया है मोह जिन्होंका (ते) वे (उच्चैः) महान् (परं ज्योतिः) उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप (अनवम् अनयपक्षाक्षुण्णम्) अनादि कालीन खोटी नयों को नष्ट करने वाले (सपदिएव) शीघ्र ही [समयसारं ईक्षन्ते] समयसार को देखते हैं ॥४॥

(मालिनी)

व्यवहरणनयःस्याद्यद्यपिप्राक्पदव्या—
मिहनिहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः ।
तदपिपरममर्थंचिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैषकिंचित् ॥५॥

अन्वयार्थ—(यद्यपि इह प्राक्पदव्याम् निहितपदानां) यद्यपि यह पहली अवस्था में अर्थात् निश्चयनय में रक्खा है पैर जिन्होंने (हन्त) हर्ष है कि (व्यवहारनयः हस्तावलम्बःस्यात्) यह व्यवहारनय हस्तावलम्ब हो (तदपिचिच्चमत्कारमात्रं) तो भी चैतन्य चमत्कारमात्र (परविरहितं) परसे रहित (परममर्थं) श्रेष्ठ अर्थ को (अंतः) अंतरंगमें (पश्यतां) देखती है (एषः-किंचित् न) यह कुछ भी कार्यकारी नहीं है ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वेनियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः प्रथक्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शनमेतदेवनियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वानवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तुनः

अन्वयार्थ—(यत् शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य) जो शुद्ध-नय निश्चयनय से एकत्वमें निश्चल (व्याप्तुः) अपने द्रव्यगुण पर्यायोंमें व्याप्त (पूर्णज्ञानघनस्य अस्य आत्मनः) पूर्णज्ञानघन इस आत्मा का जो श्रद्धान है सो (दर्शनम्) दर्शन है यह दर्शन अन्य द्रव्यों से प्रथक् है (एतदेव सम्यग्दर्शनम्) जितना सम्यग्दर्शन है (अयं आत्मा नियमात् तावान्) उतना ही यह आत्मा नियम से है (इमाम् नवतत्वसन्ततिम् मुक्त्वा) यह नवतत्व की संतति को छोड़कर (नः) हमारे (अयम् एकः-आत्मा अस्तु) यह एक आत्मा हो ॥६॥

(अनुष्टुप)

अतःशुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुंचति ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत् अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिःनव तत्वगतत्वेपि चकास्ति) जो इस शुद्धनय का आश्रय करने वाली जो भिन्न ज्योति नव तत्वमें प्राप्त होते हुए भी प्रकाशमान है (तत् एकत्वं न मुंचति) वह ज्योति एकपने को नहीं छोड़ती ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी)

चिरमिति नवतत्वच्छन्नमुन्नीयमानं ।
कनकमिवनिमग्नं वर्णमालाकलापे ।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं ।
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (चिरम्) अनादि कालीन (नवतत्वच्छन्नम्) नवतत्व की संतति में छिपी हुई (वर्णमाला-कलापे) वर्णमालाके समुदायमें (निमग्नं) डूबे हुए (कनकम् इव) सोने के समान (उन्नीयमानं) उठी हुई (सततविविक्तं) निरन्तर अलग रहने वाली (प्रतिपदम्) प्रत्येक पद में (उद्योतमानम्) प्रकाशमान (इदम् आत्मज्यातिः) इस आत्मा की ज्योति को (एकरूपं) एक रूप से (दृश्यताम्) देखो ॥८॥

(मालिनी)

उदयति न नयश्रीरस्तमेतिप्रमाणं—
क्वचिदपि च न विद्मो यातिनिक्षेपचक्रं ।
किमपरमभिदध्मोधाम्नि सर्वंकषेऽस्मि—
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(नयश्री) नयरूपीलक्ष्मी (न उदयति) उदय को प्राप्त नहीं होती (प्रमाणं) प्रमाण (अस्तम्) अस्तको (एति) प्राप्त हो जाता है (निक्षेपचक्रम्) निक्षेपों का समुदाय (अपि) भी (क्वचित्) कहाँ पर (याति) चला जाता है (न विद्मः) यह हम नहीं जानते (अपरम्किम्) और तो क्या (अभिदध्मः) कहें (सर्वंकषेऽस्मिन्) सबको नीचा करने वाले इस (धाम्नि) चैतन्यरूप तेजके (अनुभवम्) अनुभव क (उपयाते) प्राप्त होने पर (द्वैतम्) द्वैत (एव) ही (न) नहीं (भाति) प्रकाशमान रहता है ॥९॥

(उपजाति)

आत्मस्वभावंपरभावभिन्न--
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं ।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं--
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(परभावभिन्नम्) परके भावों से भिन्न (आपूर्णम्) ज्ञान से पूर्ण (आद्यन्तविमुक्तं) आदि अंत करके रहित (विलीनसंकल्पजालं) संकल्पके समूहसे रहित (एकं) एक रूप (आत्मस्वभावम्) आत्मस्वभावको (प्रकाशयन्) प्रकाश करता हुआ (शुद्धनयः) शुद्धनय (अभ्युदेति) उदय को प्राप्त होता है ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी—
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्रप्रतिष्ठां !
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंता—
ज्जगदपगतमोही भूय सम्यक् स्वभावं ॥११॥

अन्वयार्थ—(अमी) ये (बद्धस्पृष्टभावादयः) बंधे हुए छुवे हुए आदि भाव (स्फुटम् उपरि तरन्तः) स्पष्ट रूप से ऊपर तरते हुए (अपि) भी (एत्य) आकर (यत्रप्रतिष्ठां) जो स्थिति को (हि) निश्चयसे (न) नहीं (विदधति) करते हैं (अपगतमोहीभूय) मोहरहित होकर (सम्यक्स्वभावं) समीचीन स्वभाव वाले (समंतात्जगत्) चारों तरफ से जगत को (उद्योतमानम्) प्रकाशित करने वाले (तमेव) उसही चैतन्य आत्माका (अनुभवतु) अनुभव करो ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित)

भूतं भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधीर्य-
द्यन्तःकिलकोऽप्यहो कलयति व्याहृत्य मोहं हटात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्तेध्रुवं ।
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(यदिकःअपि) कोई भी (सुधीः) बुद्धिमान (भूतं) हो चुके (भातं) हो रहे (अभूतम्) आगे होने वाले (बन्धं) बंधको (रभसा एव) शीघ्रही (निर्भिद्य) छिन्न भिन्न करके (हटात्) हटसे (मोहं) मोहको (व्याहत्य) नाश करके (किल) निश्चयसे (अन्तः) अंतरंगमें (कलियति) लीन होता है (अहो) आश्चर्य है (आत्मानुभवैकगम्यमहिमा) अपने अनुभव से ही जानने योग्य है महिमा जिसकी (व्यक्तः) स्पष्ट (नित्यंकर्म-कलंकपंकविकलः) हमेशा कर्मकलंकरूपी कीचड़ से रहित (शाश्वतः) हमेशा (अयम्) यह (आत्माध्रु वं) आत्मानिश्चयसे (स्वयं देवःआस्ते) स्वयं देव है ॥१२॥

(वसंततिलका)

आत्मानुभूतिरितिशुद्धनयात्मिका या—
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेतिबुद्ध्वा ।
आत्मानमात्मनिनिवेश्य सु निःप्रकम्प—
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनःसमन्तात् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(शुद्धनयात्मिका) शुद्धनयही है स्वरूप जिसका (इति) ऐसी (या) जो (आत्मानुभूति) आत्मानुभूति है (किल)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयसे (एव) ही (इयं) यही (ज्ञानानुभूति) ज्ञानानुभूति है (इति बुद्ध्या) ऐसी बुद्धिसे (आत्मनि) अपनेमें (सुनिःप्रकम्पम्) अतिनिश्चल (आत्मानम्) अपने आत्माको (निवेश्य) लगाकर (समन्तात्) चारों तरफसे (नित्यं) हमेशा (अवबोधघनः) ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसा (एकःआत्मा अस्ति) एक आत्मा ही है ॥१३॥

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहिः
महःपरममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसमुल्लवणखिल्यलीलायितं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अखण्डितम्) खंडरहित (अनाकुलम्) आकुलता रहित (अन्तर्बहिः) अन्तरंग और बहिरंग (ज्वलत्) प्रकाशमान् (सहजम्) स्वभाव से (उद्विलासं) उत्पन्न हुआ अर्थात् प्रगट हो चुकी है स्वाभाविक क्रीडा जिसमें ऐसा (अनंतं) जिसका अन्त नहीं ऐसा (परमम् महः) सर्व श्रेष्ठ तेज (सदा) हमेशा (नः) हमारे (अस्तु) हो (यत्) जो (चिदुच्छलननिर्भरं) चैतन्य के प्रकाश से व्याप्य (लवण-खिल्यलीलायितं) लवण की डली की लीला के समान (एक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसम् उल्लसत्) एक रस को (सकलकालं) सर्वदा (आलम्बते) आलम्बन करता है ॥१४॥

(अनुष्टुप)

एष ज्ञानघनोनित्यमात्मासिद्धमभीप्सुभिः ।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(सिद्धिम् अभीप्सुभिः) आत्मसिद्धि को चाहने वाले (नित्यम्) हमेशा (ज्ञानघनः) ज्ञानघन रूप से (एष) इस (आत्मा) आत्मा को (साध्यसाधकभावेन) साध्य साधक भाव से (द्विधः) दो भेद रूप होते हुए भी (एकःसमुपास्यताम्) एक रूप से उपासना करें ॥१५॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(आत्मा) आत्मा (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वात्) दर्शन ज्ञान चारित्र तीन रूप होने से (मेचकः) मेचक (च) और भेदरूप (स्वयं एकत्वतः) स्वयं एकपनेसे (अमेचकःअपि) अभेदरूप भी (अस्ति) है और (प्रमाणतःसमम्) प्रमाणरूप से समान है ॥१६॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिःपरिणतत्वतः ।
एकोऽपित्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेणमेचकः ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—निश्चयनय से (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः) आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भेदरूप परिणत होता हुआ (एकःअपि) एक ही है और (व्यवहारेण) व्यवहार से (त्रिस्वभावत्वात्) तीन स्वभाव वाला होता हुआ (मेचकः) मेचक भेदरूप है ॥१७॥

(अनुष्टुप)

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्व ज्योतिषैककः ।
सर्व भावान्तरध्वंसि स्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(परमार्थेनतु) निश्चयनय से तो (व्यक्त ज्ञातृत्व ज्योतिषैककः) प्रगट ज्ञाता ज्योति स्वरूप एक ही है (सर्व-भावान्तरध्वंसि स्वभावत्वात) सर्वपर्यायान्तरों का नाश करने वाले स्वभाव से (अमेचकः) अभेदरूप ही है ॥१८॥

(अनुष्टुप)

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैःसाध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९

अन्वयार्थ—(मेचकामेचकत्वयोः) मेचक यानि भेदरूप और अमेचक यानि अभेदरूप इन दोनों की (चिन्तया) चिन्ता करना (अलम्) व्यर्थ (अस्ति) है (दर्शनज्ञानचारित्रैः) दर्शन ज्ञान चारित्रसे (एव) ही (आत्मनः) आत्माकी (साध्यसिद्धिः) साधनासे ही सिद्धि होती है (अन्यथा च न) अन्यथा नहीं हो सकती ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अनुष्टुप)

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया—
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनन्त चैतन्यचिन्हम्—
नखलु नखलु यस्मादन्यथासाध्यसिद्धिः ॥२०

अन्वयार्थ—(एकताया) एकतासे (अपतितम्) पतित नहीं होने वाले (कथमपि) किन्तु (समुपात्तत्रित्वम्) व्यवहार नयसे प्राप्त किया है तीनपने को जिसने (अपि) ऐसे (अच्छम्) स्वच्छ (उद्गच्छत्) प्रकाशमान् (अनन्तचैतन्यचिन्हम्) अनंत चैतन्यचिन्हवाले (इदं) इस (आत्मज्योतिः) आत्म तेज का हम (सततं) निरंतर (अनुभवामः) अनुभव करते हैं (यस्मात्) क्योंकि (साध्यसिद्धिः) साध्य की सिद्धि (अन्यथा) दूसरी तरह से (नखलु नखलु) निश्चयसे नहीं होती, नहीं होती ॥२०॥

(मालिनी)

कथमपिहि लभन्ते भेदविज्ञानमूला—
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।
प्रतिफलनिनिमग्नानन्तभावस्वभावैः—
मुकुरवदविकारा संततंस्युस्त एव ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(ये) जो (प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावैः) प्रतिबिम्बरूपसे निमग्न अनन्त भावात्मक स्वभावों के द्वारा (स्वतः) खुद अथवा (अन्यतः) दूसरे के द्वारा (भेदविज्ञानमूलाम्) भेदविज्ञानप्रधान (अनुभूतिं) अनुभूतिको (हि) निश्चयसे (कथमपि) किसी भी प्रकार (अचलम्) अचलरूप से (लभन्ते) प्राप्त करते हैं। (ते) वे (एव) ही (संततं) निरन्तर (मुकुरवत्) दर्पण के समान (अविकाराः) निर्विकार (स्युः) होते हैं ॥२१॥

(मालिनी)

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं ।
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ॥
इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः ।
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२

अन्वयार्थ—(इदानीं) इस समय (जगत्) जगत (आजन्मलीढं) जन्मसे लगे हुए (मोहम्) मोहको (त्यजतु) छोड़े (रसिकानां) रसिक जनों के (रोचनं) रुचिकर (उद्यत्) उदीयमान (ज्ञानं) ज्ञानका (रसयतु) आस्वादन करें (इहआत्मा) यह आत्मा संसारमें (अनात्मना) अनात्माके (साकम्) साथ (कथमपि) किसी भी तरह से (एकः) एक (न) नहीं हो सकता (किल) किन्तु (क्वापि) किसी भी (काले) समय (तादात्म्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तिम्) निजरूपताको (कलयति) प्राप्त करता है ॥२२॥

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्वकौतूहली स—
न्ननुभवभवमूर्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम् ॥
पृथगथविलसंतं स्वं समालोक्य येन ।
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥२३॥

अन्वयार्थ– (अयि) हे आत्मन् (कथमपि) किसी भी प्रकार से (व्यवहार नय सं) (मृत्वा) मरकर भी (तत्वकौतूहली) तत्व का है कौतूहली यानि तत्व का चिन्तवन करने वाला (मुहूर्तम्) क्षण भर (भवमूर्तेः पार्श्ववर्ती) शरीर के पास में रहता हुआ (सन्) और (प्रथगथविलसंतं) अलग क्रीडा करने वाले (स्वं) अपनेको (समालोक्य) देखकर (अनुभव) अनुभवकर (येन) जिससे (मूर्त्या) शरीर के (साकम्) साथ (एकत्वमोहं) एकपने के मोह को (झगिति) शीघ्र ही (त्यजसि) छोड़ सके ॥२३॥

(शार्दूल विक्रीडित)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशोधाम्नानिरुंधंतिये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनोमुष्णन्तिरूपेण ये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिव्येनध्वनिनासुखं श्रवणयोःसाक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरा स्तीर्थेश्वराःसूरयः२४

अन्वयार्थ–(ये) जो (कान्त्या) शारीरिक कान्ति से (एव) ही (दशदिशः) दशों दिशाओं को (स्नपयन्ति) निर्मल करते हैं (स्नान कराते हैं) (ये) जो अपने (धाम्ना) तेज से (महस्विनां) महतपुरुषों के तेज को (उद्दामधाम्) अपने तेज से (निरुन्धन्ति) नीचा कर देते हैं। (ये) जो [रूपेण] रूपसे [जनमनः] मनुष्योंके मनको [मुष्णन्ति] आकर्षित करते हैं। [ये] जो [दिव्येनध्वनिना] मनोहर दिव्यध्वनिसे (साक्षात्) साक्षात् [श्रवणयोः] कानों को [सुखं] सुखकारी [अमृतम्] अमृतको [क्षरन्तः] झराते हैं [ते] वे (अष्टसहस्रलक्षणधराः) एक हजार आठ लक्षणों को धारण करने वाले (तीर्थेश्वराः) तीर्थंकर [सूरयः] आचार्य [वन्द्याः] वंदना करने योग्य हैं ॥२४॥

(आर्या)

प्राकारकवलितांबरमुपवन राजीनिगीर्ण भूमितलं
पिवतीव हि नगरमिदं परिखा वलयेन पातालं ॥२५

अन्वयार्थ–[प्राकारकवलितांवरम्] परकोटासे ग्रस लिया है आकाशको जिसने [उपवनराजी] बागकी पंक्ति [निगीर्ण भूमितलं] निगला है भूमितल को जिसने ऐसा ऊँचा [इदंनगरं] यहनगर [हि] निश्चय से [परिखा वलयेनपातालं] खाईमंडलसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पातालको [इर्वापिबति] ही मानो पी रहा है ॥२५॥

(आर्या)

नित्यमविकारसुस्थित,सर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं
अक्षोभमिवसमुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ॥२६॥

अन्वयार्थ—(नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगम्) हमेशा विकाररहित समीचीन रूपसे स्थित है सर्वाङ्गजिसका(अपूर्वसहज-लावण्यं) अपूर्व स्वाभाविक है सौन्दर्य जिसका (परं जिनेन्द्ररूपं) श्रेष्ठ जिनेन्द्रदेव का रूप (अक्षोभम्) क्षुब्ध नहीं होने वाले (समुद्रं इव) समुद्रके समान (जयति) जयवान रहे ॥२६॥

॥ अथ निश्चय व्यवहाररूप स्तुति काव्य ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोनिश्चया
न्नुःस्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न
तत्तत्त्वतः। स्तोत्रंनिश्चयतश्चितोभवतिचित्स्तुत्यैव
सैवंभवेन्नातस्तीर्थंकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांग-
योः ॥२७॥

अन्वयार्थ—(कायात्मनः व्यवहारतः) काय और आत्मा के व्यवहारनय से (एकत्वं) एकपणा है (निश्चयात्) निश्चयनय से (तु) तो (न) नहीं है (तुः) और (वपुषःस्तोत्रं) शरीरका स्तोत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(व्यवहारतः) व्यवहारनय से होता है (तत्त्वतः) वह स्तोत्र निश्चयनय से शरीर की (स्तुत्या न) स्तुति से नहीं होता (स्तोत्रं निश्चयतश्चितः भवति) स्तोत्रनिश्चयनयसे उस चैतन्य का होता है (एवं सःचित् स्तुत्याएव) इस तरह वह चैतन्य ही स्तुति करने योग्य हो सकता है (अतः तीर्थंकर स्तव उत्तरवलात्) इसलिये तीर्थंकरभगवान के स्तवन के बल से (आत्मांगयो एकत्वंन) आत्मा और शरीर में एकपना नहीं हो सकता ॥२७॥

(मालिनी)

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां--
नयविभजन युक्त्यात्यंतमुच्छादितायां ।
अवतरति न वोधो वोधमेवाद्यकस्य--
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(इति परिचिततत्वैः) इस प्रकार जान लिया है वस्तु तत्वको जिन्होंने ऐसे सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा (नयविभजन युक्त्या) नय के विभागरूप युक्ति से अर्थात् निश्चयनय से (आत्मकायैकतायां) आत्मा और शरीर की एकता को (अत्यन्तं) सर्वथा (उच्छादितायां) उड़ा देने पर (अद्यएव) इस समय ही (वोधः) ज्ञान (कस्य) किस ज्ञानी पुरुष के (वोधम्) आत्मज्ञान को (न) नहीं (अवतरति) उत्पन्न करता है (अपितु) किन्तु (सर्वस्य) सभीके उत्पन्न करता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अतः) इसलिये (स्वरसरभसकृष्टःप्रस्फुरन् आत्मा एकःएव) अपने आत्मीक रस के वेग से खीचा हुआ अत्यंत प्रकाशमान आत्मा एक ही (अस्ति) है ॥२८॥

(मालिनी)

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यन्तवेगा—
दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ॥
झटिति सकल भावैरन्यदोयैर्विमुक्ता—
स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२६॥

अन्वयार्थ—(अपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः) परभावों के छोड़ने की दृष्टान्त दृष्टि (यावत्) जबतक (अत्यन्तवेगात्) बहुत शीघ्रतासे (वृत्तिं) वृत्ति अर्थात् स्थिरता को (अनवम्) यथास्यात्तथा अर्थात् यथार्थ रूपसे जैसे बने तैसे (न अवतरति) नहीं प्राप्त करती है (तावत्) तबतक (झटिति) शीघ्र ही (अन्यदीयैः) दूसरे (सकलभावैः) सम्पूर्ण भावों से (विमुक्ता) रहित (इयम् अनुभूतिः) यह अनुभूति अर्थात् स्वानुभव (स्वयं आविर्बभूव) स्वतः प्रगट हो जाता है ॥२६॥

(स्वागता)

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं, चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं। नास्ति नास्तिमम कश्चन मोहः, शुद्धचिद्-घन महोनिधि रस्मि ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(सर्वतः) सब तरफसे (स्वरसनिर्भरभावं) आत्मीकरससे परिपूर्ण हैं भाव जिसके ऐसे (स्वं) अपनी आत्मा को (इह) इस लोक में (अहं) मैं (स्वयं) स्वतः (एकं) एक अर्थात् अद्वितीय (चेतये)जानता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ (मम) मेरे अर्थात् शुद्ध आत्मा के (कश्चन) कोई भी (मोहो नास्ति) मोह नहीं है (नास्ति) नहीं है (अहंतु) मैं तो (शुद्धचिद्घनमहोनिधिः) शुद्ध चैतन्यघन तेज का खजाना (अस्मि) हूँ ॥३८॥

(मालिनी)

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके—
स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं ।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः—
कृतपरिणति रात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३१॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (सर्वैः) समस्त (अन्यभावैः) अन्य भावों अर्थात् कर्मोपाधि जनित समस्त विकार भावों के (सह) साथ (विवेके) भेदके (सति) होने पर (अयम्) यह (उपयोगः) चैतन्यका परिणमन (स्वयं) स्वतः (एकं) एक अर्थात् असहाय अद्वितीय (आत्मानं) आत्मा को (विभृत) धारण करता हुआ (प्रकटितपरमार्थैः) प्रगट हो गया है श्रेष्ठ स्वरूप जिन्हों का ऐसे (दर्शनज्ञानवृत्तैः) दर्शन ज्ञान और चारित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से (कृतपरिणतिः) किया है परिणमनको जिसने (एव भूतः) ऐसा (स उपयोगः) वह उपयोग (आत्मारामे) आत्मारूपी आराम अर्थात् विश्राम स्थान में (एवं) ही (प्रवृत्तः) प्रवेश करता है ।।३१।। (वसंततिलका)

मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोकः—
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः ।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण—
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ।।३२।।

अन्वयार्थ—(अमी) ये (समस्तः) सभी (लोकः) जीव (आलोकं) लोकपर्यन्त अथवा (आलोकंयथास्यात्तथा) सर्वथा स्पष्ट रूप जैसे बने तैसे (उच्छलति) उछलने वाले अर्थात् तरंगित (शान्तरसे) शान्तरूपरसमें (सममेव) एकसाथही (निर्भरं) अत्यन्त रूपसे (मज्जन्तु) डूबें अर्थात् गोते लगावें (विभ्रमतिरस्करिणीं) मोहरूपी आवर्ण को (भरेण) आत्मिक शक्ति से (आप्लाव्य) दूरकर (अवबोधसिन्धुः) ज्ञानकासमुद्र (एषः) यह (भगवान्) आत्मा (प्रोन्मग्नः) प्रगट हुआ है ।।३२।।

नृत्य कुतूहल तत्वको, मरियवि देखो धाय
निजानंद रसमें छको, आन सबै छिटकाय

।। इति पूर्वरंगाधिकारं समाप्तम् ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥२॥ अथ जीवाजीवाधिकारः लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित)

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा-
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत्-
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलंविलसति ज्ञानं मनोह्लादयत् ।१

अन्वयार्थ—(जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा) जीव और अजीव के विवेक से परिपुष्ट दृष्टि से (पार्षदान्) सभासदों अर्थात् भव्य जीवों को (प्रत्याययत्) समझाता हुआ (आसंसार निबद्धबंधनविधिध्वंसात्) अनादि संसार से बंधे हुए बंधन के विधानके विनाश से (विशुद्धं) अतिनिर्मल (स्फुटत्) स्फुरायमान (आत्मारामम्) आत्मा ही है क्रीडा स्थान अर्थात् उपवन जिसका (अनंतधाम महसा) अनन्तधाम तेजरूप (अध्यक्षेण) प्रत्यक्षसे (नित्योदितं) सर्वदा उदित रहने वाला (धीरोदात्तं) अविकृत-विशाल (अनाकुलम्) आकुलता से रहित (मनः) मनको (ह्लादयत्) आनन्दित करता हुआ (ज्ञानं विलसति) ज्ञान-विलास करता है अर्थात् शोभित होता है ॥१॥

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन—
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो—
ननुकिमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२॥

अन्वयार्थ—(विरम) दूर रहो (अपरेण) दूसरे (अकार्य-कोलाहलेन) निष्प्रयोजन वार्तालाप से (किं) क्या प्रयोजन (स्वयं अपि) खुद भी (निवृत्तः) निश्चल (सन्) होता हुआ (त्वम् एकं) तू एक (षण्मासं) छह माह (पश्य) देख (पुद्गलात्) पुद्गलसे (भिन्नधाम्नाः) पृथक है तेज जिसका अथवा स्थान जिसका ऐसे (पुंसः) पुरुष-आत्मा के (हृदयसरसि) मनरूपी तालाबमें (ननु) निश्चयसे (किं) क्या तो (अनुपलब्धिः) अप्राप्ति (कि च) और क्या (उपलब्धिःभाति) प्राप्ति मालूम पड़ती है ॥२॥

(अनुष्टुप)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं ।
अतोऽतिरिक्ताःसर्वेऽपि भावाःपौद्गलिकाअमी ॥३

अन्वयार्थ— (चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारः) चेतना रूप शक्ति से भरा हुआ है सर्वस्वसार जिसका ऐसा (अयं) यह (जीवः) आत्मा (इयान्) इतना अर्थात् चैतन्यरूप (अस्ति) है (अतः) इससे (अतिरिक्ताः) प्रथक (अमी) ये रागादि (सर्वेपि) सभी (भावाः) परिणाम (पौद्गलिकाः) पुद्गल सम्बन्धी (संति) हैं ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी)

सकलमपिविहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं ।
इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्—
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तं ॥४॥

अन्वयार्थ—(चिच्छक्तिरिक्तं) चैतन्य शक्ति से शून्य (सकलमपि) सभी भावों को (अह्नाय) शीघ्र (विहाय) छोड़कर (चिच्छक्तिमात्रं) चैतन्य शक्ति प्रमाण (स्वंच) अपनी आत्मा को (स्फुटतरम्) अत्यन्त स्फुट रूप से (अवगाह्य) आलोडनकर (विश्वस्य) समस्त पदार्थों के (उपरि) ऊपर (चारुचरन्तं) सुन्दरता से चलने वाले (अनन्तं) अविनश्वर (इमं) इस (आत्मानं) आत्मा को (आत्मनि) अपने में (परमात्मा) उत्कृष्ट आत्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूप से (कलयतु) प्राप्त करे ॥४॥

वर्णाद्या वा रागमोहादयोवाभिन्नाभावाः सर्व एवास्य पुंसः ॥ तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥

अन्वयार्थ—(वर्णाद्या) वर्णादि (वा) अथवा (रागमोहादयः) राग द्वेष मोह आदि (सर्वे) सभी (भावाः) भाव (अस्य) इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पुंसः) आत्मा से (भिन्ना) अलग (एव) हो (संति) हैं (तेन) तिस कारण से (एव) ही (तत्त्वतः) वस्तु स्वरूप के (अंतः) अंतरंग को (पश्यतः) देखने वाले (अस्य) इस (पुंसः) आत्मा के (अमी) ये वर्णादि और रागादि भाव (नो) नहीं (दृष्टाः) देखे (स्युः) जाते हैं (परं) सिर्फ (एकं) एक आत्म द्रव्य ही (दृष्टं) देखा (स्यात्) जाता है ॥ ५ ॥

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेवतत्स्यान्न कथंच नान्यत् । रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासि ॥६॥

अन्वयार्थ—(अत्र) इस लोक में (येन) जिस पदार्थ से (यत्) जो (किंचित्) कुछ भी (निर्वर्त्यते) रचा जाता है (तत्) वह (तदेव) वही (स्यात्) है (कथंचन) किसी भी प्रकार से (अन्यत् न) दूसरा नहीं (इह रुक्मेण निर्वृत्तं) इस लोक में स्वर्ण से रची गई (असिकोशं) तलवार की म्यान को तत्वज्ञ लोग (रुक्मंपश्यन्ति) सोना देखते हैं (असिं कथंचन न) तलवार को किसी भी प्रकार से नहीं देखते ॥६॥

(उपजाति)

वर्णादि सामग्र्यमिदं विदंतु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततोऽस्त्विदं पुद्गलएव नात्मा
यतः सविज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७॥

अन्वयार्थ—(इदं वर्णादिसामग्र्यम्) यह वर्णादि सामग्री (हि) निश्चयसे (एकस्यपुद्गलस्यनिर्माणम् विदन्तु) एक पुद्गल की रचना जानो (ततः इदं पुद्गल एव अस्तु) तिस कारण से यह वर्णादि सामग्री पुद्गल ही है (आत्मा न) आत्मा नहीं (यतःसविज्ञानघनः) क्योंकि वह आत्मा विज्ञान स्वरूप है (ततःअन्यः) इसलिये पुद्गल से भिन्न (अस्ति) है ॥७॥

(अनुष्टुप)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भोघृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८

अन्वयार्थ—(घृतकुम्भाभिधानेऽपि) घी का घड़ा कहने पर भी (चेत् कुम्भो घृतमयो न) यदि घड़ा घी का नहीं है तो (वर्णादिमज्जीवः जल्पनेऽपि) वर्णादिमान जीव कहने पर भी (जीवः तन्मयःन) जीव वर्णादिमान नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप)

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम् ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥९॥

अन्वयार्थ—(जीवः) जीव (तु) तो (स्वयं) खुद (चैतन्यं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैतन्य है (अनाद्यनन्तं) आदि और अन्त से रहित (अचलं) चंचलता से रहित (स्वसंवेद्य) स्वतः जानने योग्य (इदं उच्चैः) यह अतिशयरूप (स्फुटम्) स्फुरायमान (चकचकायते) अतिशय रूपसे प्रकाशमान है ॥६॥

(शार्दूलविक्रीडित)

वर्णाद्यैःसहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्त्तत्वमुपास्यपश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः
इत्यालोच्यविवेचकैःसमुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा
व्यक्तंव्यंजितजीवतत्वमचलं चैतन्यमालम्व्यतां

अन्वयार्थ— (यतः अजीवः) जिस कारण से अजीव (वर्णाद्यैःसहितः) वर्णादि सहित (तथाविरहिता) तथा वर्णादि से रहित (द्वेधास्ति) द प्रकार का है (ततःअमूर्तत्वं) तिस कारण से अमूर्तपनेको (उपास्य) प्राप्त कर (जगत्जीवस्यतत्वं नपश्यति) संसारी जीव वस्तु के स्वरूप को नहीं देखते हैं (इति आलोच्य) ऐसा विचार कर (विवेचकैः) ज्ञानी पुरुषों ने परीक्षाकर (अव्याप्ति न) अव्याप्ति दोष से दूषित नहीं (वा) अथवा (अतिव्याप्ति न) अतिव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है (इति समुचितं) इस प्रकार वहुत ठीक (व्यक्तं) कहा (अतः अचलं व्यंजितजीवतत्वं) इसलिये निश्चल स्पष्ट रूप जीवतत्व को (चैतन्यं) चैतन्यका (आलम्व्यतां) आलम्बन करना चाहिए॥१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वसंततिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं—
ज्ञानीजनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तं ॥
अज्ञानिनोनिरवधिप्रविजृम्भितोऽयं—
मोहस्तु तत्कथमहोवतनानटीति ॥११॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी जनः) ज्ञानवान मनुष्य (लक्षणातः विभिन्नं) लक्षण से अत्यन्त भिन्न (जीवात्) जीव द्रव्य से (स्वय उल्लसन्तं) स्वतः प्रकाशमान (अजीवंइति स्वयं अनुभवति) अजीवद्रव्य को इस प्रकार खुद अनुभव करता है (तु) किन्तु (अज्ञानिनः) अज्ञानी पुरुष (निरवधि-प्रविजृम्भितः) मा-रहित फैलता हुआ (अयम् मोहः) यह मोह (कथं) क्यों (नानटीति) बार बार नाचता है (तत् अहोवत) यह हमको बड़ा अचम्भा अर्थात् खेद है ॥११॥

(वसंततिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये—
वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध—
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अस्मिन् अनादिनि) इस अनादि (महति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविवेक नाट्ये) महान् अविवेक रूपी नाटक में (वर्णादिमान्) वर्णादि वाला (पुद्गलएव) पुद्गल ही (नटति) नाचता है (अन्यःन) दूसरा नहीं (च) और (अयं जीवः) यह जीव (रागादि पुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः अस्ति) रागादि पुद्गल के विकारों से भिन्न निर्मल चैतन्य धातु रूप मूर्ति वाला है ॥ १२ ॥

(मंदाक्रांता)

इत्थं ज्ञान क्रकच कलना पाटनं नाटयित्वा—
जीवा जीवौस्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः ॥
विश्वं व्याप्यप्रसभविकशद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या—
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥१३॥

अन्वयार्थ—(इत्थं) इस प्रकार (जीवाजीवौ) जीव और अजीव दोनों (ज्ञानक्रकचकलनापाटनं) ज्ञानरूपी करोंत के उपयोग से भिन्नता को (नाटयित्वा) दिखाकर (नचा कर) (यावत्) जब तक (स्फुट विघटनं) स्पष्ट प्रथक बिल्कुल भेद को (नैव) नहीं (प्रयातः) प्राप्त होते हैं (तावत्) तब तक (प्रसभ-विकशत्) वेग से प्रगट होता हुआ (ज्ञातृद्रव्यं) जीव द्रव्य (व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या) प्रगट चैतन्य शक्ति से (विश्वं व्याप्य) जगत को व्याप्त कर (स्वयं अतिरसात्) खुद अति वेग से (उच्चैः चकाशे) ऊपर शोभित होता है ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥३॥ कर्तृकर्माधिकारः लिख्यते ॥

(मंदाक्रान्ता)

एकः कर्ता चिदहमिहं मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानांशमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिं
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्वं ॥१

अन्वयार्थ—(इह एकःचित् अहं कर्ता अस्मि) इस संसार में एक चैतन्य रूप मैं कर्ता हूँ (अमी कोपादयः मे कर्म) ये क्रोधादि भाव मेरे कर्म हैं (इति अज्ञानां कर्तृकर्मप्रवृत्तिं) इस प्रकार अज्ञानियों की कर्ता कर्म की प्रवृत्ति को (अभितः) सब तरफ से (शमयत्) नाश करता हुआ (परमोदात्तं अत्यन्तधीरं) अति उत्कृष्ट अत्यन्त धीर (निरुपधिप्रथक्द्रव्यनिर्भासि) उपाधि रहित अलग अलग द्रव्यों को प्रकाशित करने वाला (ज्ञानज्योतिः विश्वं साक्षात् कुर्वत् स्फुरति) ज्ञान रूपी प्रकाश समस्त लोक को प्रत्यक्ष करता हुआ विकास को प्राप्त होता है ॥१॥

(मंदाक्रान्ता)

परपरिणतिमुज्भत् खंडयद्भेदवादा—
निदमुदितमखंडंज्ञातमुच्चण्डमुच्चैः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलःकर्मबन्धः ॥२॥

अन्वयार्थ—(परपरिणतिं उज्झत्) परकी परणति को छोड़ता हुआ (भेदवादान्खंडयत्) मति आदि भेद वादों को खंडित करता हुआ (उच्चण्डम् अखंडम् उच्चैः) अति प्रचण्ड अखंड और अति उन्नत (इदं ज्ञानं उदितं) यह ज्ञान प्रगट हुआ है (ननु) निश्चय से (इह कर्तृकर्म प्रवृत्तेः) इस संसारमें कर्ता और कर्म की प्रवृत्ति को (अवकाशःकथंस्यात्) अवकाश कैसे मिल सकता है (वा पौद्गलःकर्मबंधः कथंभवति) और पुद्गल सम्बन्धी कर्म बंध कैसे हो सकता है (अपितु न) अर्थात् नहीं हो सकता।

(शार्दूलविक्रीडित)

इत्येवंविरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिंपरां
स्वंविज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानःपरं ।
अज्ञानोत्थित कर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तःस्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतःसाक्षीपुराणःपमान् ।३

अन्वयार्थ—(इत्येवं) इस प्रकार (संप्रतिपरद्रव्यान्) इस समय पर द्रव्य से अत्यन्त (निवृतिं) निवृत्ति को जुदाई को (विरचय्य) रचकर (विज्ञानघनस्वभावं) विज्ञान घन ही है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव जिसका (परम्) सिर्फ (अभयात्) निर्भयतासे (स्वं) अपनी (आस्तिघ्नुवानः) आत्माको स्थिर करता हुआ (अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात्) अज्ञानसे पैदा हुए कर्ता कर्म रूप (क्लेशान्निवृत्तः) क्लेश से दूर होता हुआ (स्वयं ज्ञानीभूतः) खुद ज्ञान रूप हुआ (जगतःसाक्षीपुराणःपुमान् इतःचकास्ति) जगतका प्रत्यक्ष करने वाला, अनादि, आत्मा इस तरह से प्रकाशित हो रहा है ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित)

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य व्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिन्दस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एव लसितःकर्तृत्वशून्यःपुमान् ॥

अन्वयार्थ—(व्याप्य व्यापकता तदात्मनि एव भवेत्) व्याप्य और व्यापकता रूप संबंध व्याप्य व्यापक रूप वस्तु में ही होता है व्याप्य व्यापक शून्य वस्तु में तो नहीं (व्याप्य व्यापक भावसंभवं ऋते कर्तृ कर्मस्थितिः) व्याप्य व्यापकभाव के बिना कर्ता कर्म की स्थिति (का) क्या हो सकती है, अर्थात् कुछ भी नहीं, (इति उद्दामविवेकघस्मरं अहो भारेण तमःभिन्दः) इस तरह के विशाल ज्ञान रूप समस्त पदार्थों को विषय करने वाले तेजके भारसे अज्ञानांधकार को छिन्नभिन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता हुआ (ज्ञानी भूयःतदा कर्तृत्वशून्यः) ज्ञानरूप कर्तापन से रहित (स एषः पुमान् लसितः) वह यह आत्मा प्रकाशित हुआ ॥४॥

(स्रग्धरा)

ज्ञानी जानन्नपीमांस्वपरपरिणतिंपुद्गलश्चाप्य जानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तःकलयितुमसहौनित्यमत्यंतभेदात्
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भातितावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्तिक्रकचवदयंभेदमुत्पाद्यसद्यः

अन्वयार्थ—(ज्ञानी) विवेकी (इमां) इस (स्वपरपरिणतिं) अपनी और पर का परिणतिको (जानन्) जानता हुआ (अस्ति) है (अपि च) और (पुद्गलः) पुद्गल (स्वपरपरिणतिं) अपनी और परकी परिणति को (अजानन्) नहीं जानता है (अतः) इसलिये (इमौ) ये दोनों (नित्यं) हमेशा (अत्यन्तभेदात्) अत्यन्त प्रथक होनेसे (व्याप्तृ व्याप्यत्वं) व्याप्य व्यापकता को (अंतः) अन्तरंगमें (कलयितुं) धारण करने में (असहौ) असमर्थ है (अज्ञानात्) अज्ञानसे (अनयोः) जीव और पुद्गल के (कर्तृकर्म भ्रममतिः) कर्ता कर्म की भ्रमात्मक बुद्धि (तावत्) तब तक (भाति) मालूम पड़ती है (यावत्) जब तक (विज्ञानार्चिः) विज्ञान ज्योति (अयं) यह आत्मा (क्रकचवत्) करोंत के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(भेदं) भेद को (उत्पाद्य) उत्पन्न कर (सद्यः न चकास्ति) शीघ्र प्रकट नहीं होता है ॥५॥

(आर्या) ५१

यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपिभिन्नं न वस्तुतया६

अन्वयार्थ—(यः परिणमति) जो परिणमन करता है (सः कर्ता भवेत्) वह कर्ता होता है (तु) और (यः) जो (परिणामः) परिणाम है (तत्कर्म भवेत्) वह कर्म है (या) जो (परिणतिः) परिणति होती है (सा क्रिया) वह क्रिया है (वस्तुतया) यथार्थ रूप से (त्रयं अपि भिन्नं) तीनों भी भिन्न (न) नहीं हैं ॥६॥

(आर्या) ५२

एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य ।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥७॥

अन्वयार्थ—(सदा एकः परिणमति) हमेशा एक रूप परिणमन करता है (सदा) हमेशा (एकस्य) एक का (परिणामः) परिणमन (जायते) होता है (एकस्य) एक की (परिणतिः) परिणमन रूप क्रिया (स्यात्) होती है (यतः) क्योंकि (अनेकं अपि) अनेक रूप परिणमन भी (एकं एव) एक द्रव्य रूप ही होते हैं ॥७॥

(आर्या) ५३

नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से (उभौ) दो द्रव्य (न परिणमतः) एक रूप परिणमन नहीं करते (उभयोः) दो द्रव्यों का (परिणामः) एक रूप परिणमन (न प्रजायेत्) नहीं होता है (उभयोः) दो द्रव्यों की (परिणतिः) परिणति रूप क्रिया (न स्यात्) नहीं होती (यत्) क्योंकि (अनेकं) अनेक द्रव्य (सदा अनेकमेव) हमेशा अनेक ही होते हैं एक नहीं ॥८॥

(आर्या) ५४

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौस्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥९॥

अन्वयार्थ—(हि एकस्य) निश्चय से एक द्रव्य के (द्वौ कर्तारौ) दो कर्ता (न स्तः) नहीं होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे कर्मणि न) दो कर्म नहीं होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे क्रिये न स्तः) दो क्रियायें नहीं होतीं (यतः) क्योंकि (एकं अनेकं न स्यात्) एक द्रव्य अनेक द्रव्य रूप नहीं होता ॥९॥

(शार्दूलविक्रीडित) ५५

आसंसारत एव धावतिपरं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः ।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजे-
त्तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ।

अन्वयार्थ—(आसंसारतः) अनादि काल से (एव) ही (अहं परं) मैं पर द्रव्य को (कुर्वे) कर्ता हूँ (इति उच्चकैः) ऐसा महान (दुर्वारं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुख से दूर करने योग्य (महाहंकाररूपं) महा अभिमान रूप (तमः) अज्ञानान्धकार (इह) इस संसार में (ननु) निश्चय से (मोहिनां) मोही अज्ञानी के (एव धावति) ही दौड़ा आ रहा है (यदि) यदि (तत्) वह अज्ञानान्धकार (भूतार्थपरिग्रहेण) शुद्धद्रव्यार्थिक नय के ग्रहण से (एकबारं विलयं) एक बार विनाश को (व्रजेत्) प्राप्त हो जाय (तर्हि किं) तो क्या (ज्ञानघनस्थ आत्मनः) ज्ञान घन आत्मा के (तत् बंधनं) वह अज्ञानांधकार का संबंध (भूयः) फिर से (भवेत्) हो सकता है (अहो) आश्चर्य है (अपितु न भवेत्) अर्थात् नहीं हो सकता ॥१०॥

(अनुष्टुप) ५६

आत्मभावान्करोत्यात्मा, परभावान्सदा परः।
आत्मैवह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥११॥

अन्वयार्थ—(आत्मा सदा आत्मभावान् करोति) आत्मा हमेशा आत्मभावों का कर्ता है (परः सदा परभावान् करोति) पर द्रव्य सदा पर भावों को करता है (आत्मनः भावाः आत्मा एव) आत्मा के भाव आत्मारूप ही हैं (परस्य ते भावाः परः एव) पर के वे भाव पररूप ही हैं ॥११॥

(वसंततिलका) ५७

अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी-
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्ल रसाति गृध्यां-
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालं ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(यः) जो आत्मा (किल) निश्चय से (स्वयं ज्ञानं भवन्नपि) खुद ज्ञानस्वरूप होता हुआ भी (अज्ञानतस्तु) अज्ञान से तो तृणाभ्यवहारकारी) तृणादिकों को भक्षण करने वाले पशु के समान (सः रज्यते) वह अनुराग करता है (अनौ रमालं) वह खट्टमिट्ठे रस को (पीत्वा) पीकर के (दधीक्षुमधुराम्लरसादिगृध्यां) दही और शक्कर की मीठे और खट्टे रस की गृद्धता से (नूनं निश्चय करके (अज्ञानतः) अज्ञानता से (दुग्धं गां दुग्धि) दूध को गाय से दोहन करता है ॥१२॥

(शार्दूलविक्रीडित) ५८

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधियाधावन्ति पातुंमृगाः
अज्ञानात्तमसिद्रवन्ति भुजगा ध्यासेनरज्जौजनाः ।
अज्ञानाच्चविकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्-
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीं भवन्त्याकुलाः

अन्वयार्थ—(मृगाः अज्ञानात् जलधिया मृग अज्ञान के द्वारा जल की बुद्धि से (मृगतृष्णिकां) मृगमरीचिका को (पातुं धावन्ति) पीने के लिये दौड़ते हैं (जनाः अज्ञानात्) मनुष्य अज्ञान से (रज्जौ) रस्सी में (भुजगाध्यासेन) सर्प की बुद्धि से (तमसि) अन्धकार में (द्रवन्ति) भागते हैं (स्वयं अमी) खुद ये (जीवाः शुद्धज्ञानमया अपि) जीव शुद्ध ज्ञानस्वरूप होते हुए भी (अज्ञानात् विकल्पचक्र-करणात्) अज्ञान से विकल्पजाल की रचना के द्वारा (वात्तोत्तरङ्गाब्धि-वत् आकुलः) वायु से उठ रही हैं तरगें जिसमें ऐसे समुद्र के समान पीड़ित होते हुए (कर्तृ भवन्ति) कर्ता हो रहे हैं ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वसन्ततिलका) ५६

ज्ञानाद्विवेचकतयातुपरात्मनोर्यो-
जानाति हंस इव वाः पयसो विशेषं ।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो-
जानाति एव हि करोति न किंचनापि ।१४

अन्वयार्थ—(यः) जो आत्मा (ज्ञानात्) ज्ञान से (तु) और (विवेचकतया) भेद विज्ञान से (परात्मनोः) पर और आत्मा की (विशेषं) विशेषता को (वाः पयसो विशेषं) पानी और दूध की विशेषता को (हंस इव) हंस के समान (जानाति) जानता है (सः) वह (सदा) हमेशा (अचलं चैतन्यधातु) अविचल चैतन्यात्मक धातु को (अधिरूढः) आरूढ़ हुआ (जानाति एव) जानता ही है (किंचन अपि न) कुछ भी नहीं (करोति) कर्ता है ॥१४॥

(मंदाक्रान्ता) ६०

ज्ञानादेव ज्वलनपयसो रौष्ण्यशैत्य व्यवस्था-
ज्ञानादेवोल्लसतिलवणस्वादभेदव्युदासः ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः-
क्रोधादेश्चप्रभवतिभिदा भिन्दती कर्तृभावम् ।१५

अन्वयार्थ (ज्वलनपयसोः) अग्नि और जल की (औष्ण्यशैत्य व्यवस्था) उष्णता और शीतलता का भेद (ज्ञानादेव उल्लसति) ज्ञान से ही प्रगट होता है (लवणस्वादभेदव्युदासः) नमक और व्यंजन के स्वाद का भेद (ज्ञानादेव) ज्ञान से ही प्रगट होता है (स्वरसविकस-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्नित्यचैतन्यधातोः) अपने रस का विकास नित्य चैतन्यात्मक धातु का (च क्रोधादेःकर्तृभावं भिन्दती) और क्रोधादिक के कर्तापने को भेद करता हुआ (भिदाः) भेद (ज्ञानादेव प्रभवति) ज्ञान से ही प्रादुर्भूत होता है ॥१५॥

(अनुष्टुप) ६१

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमंजसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् १६

अन्वयार्थ—(एवं) इस तरह (अज्ञानं) अज्ञान रूप (अपि) और (ज्ञानं) ज्ञानरूप (आत्मानं कुर्वन्) आत्मा को कर्ता हुआ (आत्मा) आत्मा (अंजसा) निश्चय से (आत्मभावस्य कर्ता स्यात्) आत्म भाव का करने वाला होता है (परभावस्य क्वचित् न स्यात्) परभाव का कर्ता कभी भी नहीं होता ॥१६॥

(अनुष्टुप) ६२

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोतिकिम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।१७।

अन्वयार्थ—(आत्मा स्वयं ज्ञानं अस्ति) आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है (ज्ञानं) आत्मा (ज्ञानात् अन्यत् किं करोति) ज्ञान से अन्य किस का कर्ता है (अपितु) किन्तु (किं अपि न) किसी का भी नहीं (आत्मा परभावस्य कर्ता अस्ति) आत्मा पर भाव का कर्ता है (अयं-व्यवहारिणां) यह व्यवहारी जीवों का (मोहः अस्ति) मोह है ॥१७॥

(वसंततिलका) ६३

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्मनैव—
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय—
संकीर्त्यते श्रृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि (जीवः पुद्गलकर्म नैव करोति) जीव पुद्गल कर्मों को नहीं करता है (तर्हि) तो (कः) कौन (तत्) उन पौद्गलिक कर्मों को (कुरुते) करता है (इति) इस प्रकार की (अभिशंकया एव) आशंका से ही (तीव्ररयमोहनिवर्हणाय) तीव्र है वेग जिसका ऐसे मोह रूप अज्ञान के दूर करने के लिये (पुद्गलकर्मकर्तृ) पुद्गल कर्म के कर्ता को (संकीर्त्यते) कहते हैं (यूयं) तुम सब (एतर्हि) इस समय (श्रृणुत) सुनो ॥१८॥

(उपजाति) ६४

स्थितेत्यविघ्ना खलुपुद्गलस्य—
स्वभावभूतापरिणामशक्तिः ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं—
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१६॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (पुद्गलस्य) पुद्गल द्रव्य की (स्वभावभूतापरिणामशक्तिः) स्वभावरूप परिणमन रूप सामर्थ्य (खलु) निश्चय से (अविघ्ना स्थिता) निर्विघ्नस्थित हुई (तस्यां स्थितायां) उस पुद्गल द्रव्य की शक्ति के स्थित होने पर (सः आत्मनः यम् भावं करोति) वह पुद्गल द्रव्य अपने जिस भाव को कर्ता है (तस्य) उस भावका (कर्ता) करने वाला (स एव) वह पुद्गल द्रव्य ही है ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उपजाति) ६५

स्थितेति जीवस्यनिरन्तराया—
स्वभावभूतापरिणामशक्तिः ।
तस्यां स्थितायां सकरोतिभावं—
यं स्वस्य तस्यैव भवेत्सः कर्ता ॥२०॥

अन्वयार्थ—(इत्ति जीवस्य स्वभावभूता) इस प्रकार जीव की स्वभाव रूप (परिणामशक्तिः) परिणमन शक्ति (निरन्तराया) निर्विघ्न (स्थिता) स्थित हुई (तस्यां स्थितायां) उस परिणमन शक्तिके स्थित होने पर (सः) वह जीव (स्वस्य यं भावं करोति) अपने जिस भाव को कर्ता है (तस्य कर्ता सः एव) उस भावका करने वाला वह जीव ही (भवेत्) होता है ॥२०॥

(आर्या) ६६

ज्ञानमयएव भावः कुतोभवेत् ज्ञानिनो न पुनरन्यः
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ।२१।

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः) ज्ञानी के (ज्ञानमयः) ज्ञान रूप (एव) ही (भावः भवेत्) भाव होते हैं (पुनः) फिर (अन्यः) पर भाव (कुतः) किसीं भी तरह से (न भवेत्) नहीं हो सकता (अज्ञानिनः) अज्ञानी के (अज्ञानमयः) अज्ञानरूप (सर्वः) सब (अयंभावः) ये भाव (भवेत्) होते हैं (अन्यः) दूसरा (कुतः) किसी भी तरह से (न भवेत्) नहीं हो सकता ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अनुष्टुप) ६७

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः सर्वेभावाः) ज्ञानी के सभी भाव (हि) निश्चय से (ज्ञाननिवृत्ताः) ज्ञान से रचे हुए (भवन्ति) होते हैं (तु) और (अज्ञानिनः) अज्ञानी के (ते) वे (सर्वे अपि) सभी (भावाः अज्ञान निवृत्ताः) भाव अज्ञान से रचे हुए (भवन्ति) होते हैं ॥२२॥

(अनुष्टुप) ६८

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावनामेति हेतुताम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानी) अविवेकी (अज्ञानमयभावानां) अज्ञानरूप भावों की (भूमिकाः) भूमि उत्पत्ति स्थानों को (व्याप्य) व्याप्त करके (द्रव्यकर्मनिमित्तानां) द्रव्यकर्म के कारण भूत (भावानां हेतुतां) भावों के हेतुपने को (एति) प्राप्त करता है ॥२३॥

(उपेन्द्रवज्रा) ६९

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं—
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता—
स्त एव साक्षादमृतं पिबंति ॥२४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो जीव (नयपक्षपातं) नयों की आशक्ति विशेष को (मुक्त्वा) छोड़कर (नित्यं एव स्वरूपगुप्ता) हमेशा ही निज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में लीन (निवसंति) होते हैं (विकल्पजालच्युतशान्त-चित्ता:) विकल्प जालों के निकल जाने से शान्त चित्त (ते एव) वे ही जीव (साक्षात् अमृतं पिबन्ति) साक्षात अमृत को पीते हैं ॥२४॥

(उपजाति) ७०

एकस्य वद्धो न तथापरस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२५॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय की अपेक्षा से (जीवः वद्धः) जीव बंधा हुआ है (परस्य) और दूसरे नय की अपेक्षा से (तथा) बंधा हुआ (न) नहीं है (इति) इस प्रकार (चिति) आत्मा के विषय में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ पक्षपातौ स्तः) दो पक्षपात हैं (यः च्युत-पक्षपात: तत्त्ववेदी अस्ति) जो पक्षपात रहित तत्त्व को जानने वाला है (तस्य खलु नित्यं) उसके निश्चय से हमेशा (चित्) चैतन्य (चित) चैतन्य (एव अस्ति) ही है ॥२५॥

(उपजाति) ७१

एकस्य मूढ़ो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय की अपेक्षा से (मूढ:) मोही (अस्ति) है (परस्य) दूसरे नय की अपेक्षा से (तथा न अस्ति) मोही नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो:) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात (स्त:) हैं (इति) इस तरह (य:) जो (तत्त्ववेदी) तत्त्व को जानने वाला (च्युतपक्षपातः अस्ति) पक्षपात रहित है (तस्य) उसके (खलु) निश्चय करके (चित्) चैतन्य-आत्मा (चिदेव) चैतन्य ही (नित्यं) हमेशा (अस्ति) है ॥२६॥

(उपजाति) ७२

एकस्यरक्तो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्याति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२७॥

अर्थ—(एकस्य रक्तः अस्ति) एक नय की अपेक्षा से जीव राग करने वाला है (परस्य रक्तः न अस्ति) दूसरे नय की अपेक्षा से रागी नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो:) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य:) जो (तत्ववेदी च्युत-पक्षपातः अस्ति) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात रहित है (तस्य खलु चित् चिदेवनित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२७॥

(उपजाति) ७३

एकस्यदुष्टो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव॥२८॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नयस्य अपेक्षया दुष्टः अस्ति) एक नय की अपेक्षा से दुष्ट है (परस्य नयस्य अपेक्षया दुष्टः नास्ति) दूसरे नय की अपेक्षा से दुष्ट नहीं है (चिति) ऐसे चैतन्य में (द्वयोः) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२८॥

(उपजाति) ७४

एकस्यकर्ता न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥२९॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय से (जीवः कर्ता) जीव कर्ता है (परस्य) दूसरे नय से (तथा न) कर्ता नहीं है (इति चिति) ऐसे चैतन्य में (द्वयोः) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उपजाति) ७५

एकस्यभोक्ता न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३०॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय से (भोक्ता) भोक्ता है और (परस्य) दूसरे नय से (तथा न) भोक्ता नहीं है (इति चिति) इस प्रकार चैतन्य में (द्वयोः) दोनों नयों के (द्वौ पक्षपातौ) दो पक्षपात हैं ॥३०॥ (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२६॥

(उपजाति) ७६

एकस्य जीवो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३१॥

अन्वयार्थ—(एकस्य जीवः) एक नय से जीव है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नहीं है (इति चिति) इस प्रकार चैतन्य में (द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३१॥

(उपजाति) ७७

एकस्यसूक्ष्मो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३२॥

अन्वयार्थ—(एकस्य सूक्ष्मः) एक नय से जीव सूक्ष्म है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव सूक्ष्म नहीं है (चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३२॥

(उपजाति) ७८

एकस्यहेतु न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३३॥

अन्वयार्थ—(एकस्य हेतुः) एक नय से हेतु है (परस्य तथा न) दूसरे नय से हेतु नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३३॥

(उपजाति) ७६

एकस्यकार्यं न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३४॥

अन्वयार्थ—(एकस्य कार्यं) एक नय से कार्य है (परस्य तथा न) और दूसरे नय से कार्य नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जाननें वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३४॥

(उपजाति) ८०

एकस्यभावो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(एकस्य भावः) एक नय से भाव है (परस्य तथा न) दूसरे नय से भाव नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३५॥

(उपजाति) ८१

एकस्यचैको न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३६॥

अन्वयार्थ—(एकस्य जीव एकः) एक नय से जीव एक है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अनेक है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३६॥

(उपजाति) ८२

एकस्य सांतो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(एकस्य शांतः) एक नय से शांत (अंतसहित) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अन्तसहित नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३७॥

(उपजाति) ८३

एकस्य नित्यो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३८॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नित्यः) एक नय से जीव नित्य है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नित्य नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३८॥

(उपजाति) ८४

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य—
चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥३९॥

अन्वयार्थ—(एकस्य वाच्यः) एक नय से जीव वाच्य (वचन से कहने में आवे है (परस्य तथा न) दूसरे नय से वचनागोचर कहने में नहीं आवे है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युत-पक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य- आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३९॥

(उपजाति) ८५

एकस्य नाना न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥४०॥

अन्वयार्थ—(एकस्य नाना) एक नय से नाना रूप है (परस्य तथा न) दूसरे नय से नाना रूप नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उपजाति) ८६

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥४१॥

अन्वयार्थ—(एकस्य चेत्यः) एक नय से चेत्य अर्थात जानने योग्य है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से जानने योग्य नहीं है (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४१॥

(उपजाति) ८७

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ॥४२॥

अन्वयार्थ—(एकस्य दृश्यः) एक नय से दृश्य (देखने योग्य) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से देखने में नहीं आता (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४२॥

(उपजाति) ८८

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिंच्चिदेव ॥४३॥

अन्वयार्थ—(एकस्य वेद्यः) एक नय से वेद्य (वेदने योग्य) है (परस्य तथा न) दूसरी नय से वेदने में नहीं आता (इति चिति द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (यः) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातः) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चिदेव नित्यं अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य-आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४३॥

(उपजाति) ८६

एकस्य भातो न तथा परस्य—
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपात—
स्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव॥४४॥

अन्वयार्थ—(एकस्य भातः) एक नय से वर्तमान प्रत्यक्ष है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से वर्तमान प्रत्यक्ष नहीं है (इति चिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वयोः द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं और (यः तत्त्ववेदी) जो तत्त्व वेदी हैं वह स्वरूप को यथार्थ अनुभव करने वाले हैं (तस्य चिति चिदेव नित्यं खलु) उनका चिन्मात्र भाव है वह चिन्मात्र ही है (च्युतपक्षपातः) पक्षपात से रहित है ॥४४॥

(वसंततिलका) ६०

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला—
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां ।
अंतर्वहिः समरसैकरसस्वभावं—
स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(यः तत्त्ववेदी) जो आत्मा तत्त्व को जानने वाला है (सः एवं) वह पूर्वोक्त प्रकार से (स्वेच्छा समुच्छलदनल्पविकल्प-जालां) अपनी इच्छा से उठ रहे हैं अनेक विकल्पों के जाल जिसमें ऐसी (महतीं) बड़ी भारी (नयपक्षकक्षाम्) नयपक्ष रूपी वन को (व्यतीत्य) उल्लंघन कर (अन्तर्वहिः समरसैकरसस्वभावं) अन्तरंग और वहिरंग में समता रस ही है एक रस रूप स्वभाव जिसका ऐसे (स्वं अनुभूतिमात्रं) अपनी अनुभूति रूप (एकं भावं उपयाति) एक अद्वितीय भाव को प्राप्त करता है ॥४५॥

(रथोद्धता) ६१

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छल—
त्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं—
कृत्स्नमस्यति तदस्मिचिन्महः ॥४६॥

अन्वयार्थ—(यः तत्त्ववेदी) जो तत्त्व को जानने वाला है (सः एव अनुभवति) वह ही ऐसा अनुभव करता है (यत्) जो (अहं) मैं (चिन्महः अस्मि) चैतन्य तेज रूप हूँ (तत्) वह चैतन्यात्मक तेज (पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः) परिपुष्ट चंचल विकल्परूप तरंगों से एवं उच्छलति) इस तरह उठते हुए (इदं कृत्स्नम् इन्द्रजालं) इस सम्पूर्ण इन्द्र जाल को (यस्य विस्फुरणं) जिसकी चंचलता (तत् क्षण एव अस्यति) उसी समय ही दूर कर देती है ॥४६॥

(स्वागता) ६२

चित्स्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थतयैकं।
वन्धपद्धतिमपास्यसमस्तांचेतयेसमयसारमपारं ४७

अन्वयार्थ—(अहं चित्वभावभरभावितभावाभावभावपरमार्थ-तया)चैतन्य स्वभाव के समूह से भावित भाव अभावस्वरूप भावरूप परमार्थपने से (समस्तां वंधपद्धतिं) सम्पूर्ण वंध की पद्धति को (अपास्य) दूर कर (एकं अपारं समयसारं चेतये) एक अपार समयसार को अनुभव करता हूं ॥४७॥

(शार्दूलविक्रीड़ित) ६३

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानांविना
सारोयःसमयस्यभाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञानैक रसः सएष भगवान् पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानंदर्शनमप्ययकिमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम्॥४८

अन्वयार्थ—(यः नयानां) जो नयों के (पक्षैः विना) पक्षों के विना (अचलं) अविचल (अविकल्पभावं) निर्विकल्प भाव को (आक्रामत निभृतैः) प्राप्त करता हुआ निश्चिन्त पुरुषों से (स्वयं) स्वतः (आस्वाद्यमानः) अनुभूयमान (समयस्य सारः) आत्मा का सार (भाति) शोभित होता है (सः) वह (विज्ञानैकरसः) विज्ञान ही है एक रस जिसका (एषः) यह (भगवान् पुण्यः पुराणः) भगवान पवित्र पुराण (पुमान्) पुरुष (अयं ज्ञानं) यह ज्ञान (अपि) और (दर्शनं) दर्शन (अथवा किं) और तो क्या (यत् किंचन) जो कुछ (अपि) भी है (सः अयं एकः) वह यह एक आत्मा ही है ॥४८॥

(शार्दूलविक्रीड़ित) ६४

दूरं भूरि विकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतोनिजौघं वलात्
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्
नात्मन्येव सदागतानुगतता मायात्ययंतोयवत्॥४९

अन्वयार्थ—(अयं आत्मा) यह आत्मा (निजौघात्च्युतः) अपने ज्ञान घन स्वभाव से च्युत हुआ (भूरिविकल्पजालगहने) महान विकल्प जाल रूपी वन में (दूरं) अनादि काल से (भ्राम्यन्) घूमता हुआ (विवेकनिम्नगमनात्) विवेक रूप नीचे मार्ग में गमन करने से (वलात्) वल पूर्वक (दूरादेव) दूर से ही (निजौघं) अपने ज्ञान घन स्वभाव को (नीतः) प्राप्त हुआ (विज्ञानैकरसः) विज्ञान ही है एक रस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसका ऐसा (तदेकरसिनां) विज्ञान रूप एक रस ले पुरुषों के (आत्मानं तोयवत्) आत्मा को जल के समान (आत्मनिएवहरन्) आत्मा में ही मिलाता हुआ (सदागतानुगततां) निरंतर देखादेखीपने को (याति) प्राप्त करता है ॥४६॥

(अनुष्टुप) ६५

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलं।
न ज़ातु कर्तृकर्मत्वं स विकल्पस्य नस्यति ॥५०॥

अन्वयार्थ—(विकल्पकः परं कर्ता अस्ति) विकल्प करने वाला ही कर्ता है, (विकल्पः केवलं कर्म अस्ति) विकल्प ही कर्म है (सविकल्पस्य कर्तृकर्मत्वं) विकल्पवान के कर्ता कर्मपना (जातु न नश्यति) कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता ॥५०॥

(रथोद्धता) ६६

यः करोति स करोति केवलं—
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित्—
यस्तु वेत्ति न करोति सक्वचित् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो (करोति) कर्ता है (सः केवलं करोति) वह केवल कर्ता ही है (तु) और (यः) जो (वेत्ति) जानता है (सः) वह (तु) तो (केवलं) केवल (वेत्ति एव) जानता ही है (यः) जो (करोति) कर्ता है (सः) वह (हि) निश्चय से (क्वचित् न वेत्ति) कुछ भी नहीं जानता (तु) और (यः वेत्ति) जो जानता है (सः) वह (क्वचित् न करोति) कुछ भी नहीं करता है ॥५१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इन्द्रवज्रा) ६७

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्त—
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततोविभिन्ने—
ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितंच ॥५२॥

अन्वयार्थ—(करोतौ) करोति क्रिया में(ज्ञप्तिः) जानने रूप क्रिया (हि) निश्चय से (अंतः) अन्तरंग में (न) नहीं (भासते) प्रतिभाषित होती है (ज्ञप्तौ करोतिः) जानने रूप क्रिया में करने रूप क्रिया (अंतः न भासते) अन्तरंग में नहीं प्रतिभाषित होती है (ततः ज्ञप्तिः) इसलिये जानना (च) और (करोति) करना (विभिन्ने) अत्यंत भिन्न-भिन्न हैं (ततः) इसलिये (ज्ञाता) जानने वाला (कर्ता) करने वाला (न स्यात्) नहीं हो सकता (इतिस्थितं) ऐसा स्थित हुआ ॥५२॥

(शार्दूलविक्रीड़ित) ६८

कर्ता कर्मणि नास्ति, नास्तिनियतं कर्मापितत्कर्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यतेयदि तदाका कर्तृकर्मस्थितिः
ज्ञाता ज्ञातरि कर्मकर्मणि सदा व्यक्तेतिवस्तुस्थितिः
नेपथ्येवत नानटीतिरभसामोहस्तथाप्येषकिं।५३।

अन्वयार्थ—(कर्ता) कर्ता (कर्मणि) कर्म में (नियतं नास्ति) निश्चय से नहीं है (तत्) इसलिये (कर्तरि) कर्ता में (कर्मअपि नास्ति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म भी नहीं है (यदि द्वंद्वं) यदि दोनों (विप्रतिषिध्यते) विशेष रूप से निषेध किये जाते हैं (तदा कर्तृ कर्म स्थिति) तो कर्ता और कर्म की स्थिति (का) कैसी (ज्ञाता) जानने वाला (ज्ञातरि) ज्ञान में (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (कर्म) कर्म (कर्मणि) कर्म में (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (इति) इस प्रकार (वस्तुस्थितिः) वस्तु की मर्यादा (व्यक्ता) स्पष्ट हुई (तथापि) तो भी (एषः मोहः) यह मोह (रभसा नेपथ्ये) शीघ्र श्रृंगारागार में (किं नानटीति) क्यों बार बार नाचता है (इति वत्) यह खेद है ॥५३॥

(मंदाक्रान्ता) ६६

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चै
श्चिच्छक्तीनांनिकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत्।५४

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे आत्मा अज्ञान अवस्था में (कर्ता) विभाव भावों का कर्ता (आसीत्) था (तथा) तैसे (इदानीं) इस समय अज्ञान भावों का (कर्ता न अस्ति) करने वाला नहीं है (यथा) जैसे जीव के अज्ञान से जो पुद्गल कर्म द्रव्य कर्म रूप (आसीत्) था (सः) वह पुद्गल (इदानीं) इस समय (कर्म) द्रव्य कर्म रूप (न भवति) नहीं होता (यथा) जैसे (ज्ञानं) ज्ञान (ज्ञानं एव) ज्ञान ही (भवति) होता है (तथा) वैसे (पुद्गलः अपि) पुद्गल भी (पुद्गलः भवति) पुद्गल होता है (तथा) वैसे ही (अंतः) अन्तरंग में (उच्चैश्चिच्छक्तीनां) महान चैतन्य शक्तियों के (निकरभरतः) समुदाय के भार से (अत्यंत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंभीरं) अत्यंत गंभीर (एतत् अचलं) यह निश्चल (ज्ञानज्योति व्यक्तं ज्वलित) ज्ञान रूपी प्रकाश स्पष्ट रूप से प्रकाशित हुआ ॥५४॥

॥अथ पुण्यपापाधिकारः प्रारभ्यते॥४॥

(द्रुतविलंबित) १००

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो—
द्वितयतांगतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं
स्वयमुदेत्यव वोधसुधाप्लवः ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद अर्थात कर्ता कर्म अधिकार के पश्चात (अयं ग्लपितनिर्भरमोहरजा) यह नाश कर दिया है मोह रूपी महान रज को जिसने ऐसा (अववोधसुधाप्लवः) सम्यग्ज्ञान रूपी चन्द्रमा (स्वयं शुभाशुभभेदतः) खुद शुभ और अशुभ अर्थात पुण्य पाप के भेद से (द्वितयतां) दो भेदपने को (गतं) प्राप्त हुए (तत्कर्म) उस कर्म की (ऐक्यं उपनयन् उदेति) एकता को प्राप्त करता हुआ उदय होता है ॥१॥

(मंदाक्रान्ता) १०१

एको दूरात्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना—
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः—
शूद्रौ साक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(शूद्रिकायाः उदरात्) शूद्री के उदर से (युगपत् निर्गतौ) एक साथ में जन्मे (द्वौ) दो (एतौ) ये (शूद्रौअपि) शूद्र भी (एकः ब्राह्मणत्वाभिमानात्) एक ब्राह्मणपने के अभिमान से (मदिरां) मदिरा को (दूरात्) दूर से (त्यजति) छोड़ता है (अन्यः अहं शूद्रः अस्मि) दूसरा मैं शूद्र हूं (इति स्वयं नित्यं तया एव स्नाति) इसलिये खुद हमेशा उस मदिरा से ही स्नान करता है (साक्षात् जाति भेदभ्रमेण चरतः) प्रत्यक्ष जाति के भेद के भ्रम से आचरण करता है ॥२॥

(उपजाति) १०२

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां—
सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेदः ।
तद्बंधमार्गाश्रितमेकमिष्टं—
स्वयं समस्तं खलु वंधहेतुः ॥३॥

अन्वयार्थ—(हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां) हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय के (सदा अभेदात्) हमेशा अभेद होने से (हि कर्मभेद नास्ति) निश्चय कर कर्म भेद नहीं है (तत्) इसलिये (वंधमार्गाश्रितं) वंध मार्ग के आश्रित (कर्म स्वयं समस्तं वंधहेतुः) कर्म खुद सम्पूर्ण वंध का कारण (खलु इष्टं) निश्चय से इष्ट है ॥३॥

(स्वागता) १०३

कर्मसर्वमपि सर्वविदोय—
द्बंधसाधन मुशन्त्यविशेषात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेनसर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं—
ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥४॥

अन्वयार्थ—(सर्वविदः) सर्वज्ञदेव (सर्वं कर्म) सम्पूर्ण शुभ अशुभ कर्म को (यत् अविशेषात्) जिसका कारण सामान्य रूप से (वंधसाधनंउशन्ति) वंध का साधन कहते हैं (तेन) तिस कारण से (तत्) वह (सर्वं अपि) सम्पूर्ण कर्म भी (प्रतिषिद्धं) निषिद्ध रूप हुआ (ज्ञानं एव शिवहेतुः विहितं) ज्ञान ही शिवहेतु कहिये मोक्ष का कारण स्थित हुआ ॥४॥

(शिखरणी) १०४

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलुः मुनयः सन्त्यशरणाः ।
त:ा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयंविन्दन्त्येते परमममृतं तत्रनिरतः ॥५॥

अन्वयार्थ—(सर्वस्मिन्) समस्त (सुकृतदुरिते) पुण्य और पाप रूप (कर्मणि) कर्म के (निषिद्धे) निषेध किये जाने पर (किल) निश्चय से (नैष्कर्म्ये) कर्मरहित अर्थात् निवृत्ति के (प्रवृत्ते) प्रवर्तित होने पर (खलु) निश्चय से (मुनयः) मुनिजन (अशरणाः) शरणरहित (न संति) नहीं हो सकते (तदा) उस समय (एषां) इन मुनिजनों के (ज्ञाने) ज्ञान में (प्रति चरितं) आचरण किया गया (ज्ञानं) ज्ञान ही (शरणं भवति) शरण होता है (तत्र) उस ज्ञान में (निरतः) संलग्न (एते) ये मुनिजन (स्वयं) स्वतः (परमम्) श्रेष्ठ (अमृतं) अमृत को (विंदन्ति) प्राप्त करते हैं ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शिखरणी) १०५

यदेतत् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवन—
शिवस्याय हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वमपि यतो बन्ध इति तत्-
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितं ॥६॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (एतत्) यह (ज्ञानात्मा) ज्ञानरूप आत्मा (ध्रुवं अस्ति) ध्रुव है (तत् अचलं) वह निश्चल (आभाति) शोभित होता है (अयं) यह ज्ञान स्वरूप आत्मा (शिवस्य भवनं) मोक्ष का होना रूप (हेतुः) कारण (अस्ति) है (यतः) क्योंकि (स्वयं) खुद आत्मा ही (शिवःअस्ति) मोक्ष रूप है (इति) इसलिए(अतःअन्यत्) इस आत्मा से अत्यन्त भिन्न (वंधस्य) वंध का कारण है (यतः) क्योंकि (स्वयं) खुद वह भिन्न पदार्थ वंधः अस्ति) वंध रूप है (इति) इसलिए (ज्ञानात्मत्वं) ज्ञानरूप (भवनं) होना (हि) निश्चय से (अनुभूतिः) अनुभूति है (ततः) तिस कारण से (तत्) उस वंध का और मोक्ष का विधान (विहितं) किया गया है ॥६॥

(अनुष्टुप) १०६

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्वभावेन) ज्ञानरूप स्वभाव से (वृत्तं) प्रवर्तना (सदा) सर्वदा (ज्ञानस्य भवनं) ज्ञान का होना (अस्ति) है (तत्) वह ज्ञान स्वभाव (एकद्रव्यस्वभावत्वात्) एक आत्मद्रव्य का स्वभाव होने से (तदेव मोक्षहेतुःअस्ति) वह ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अनुष्टुप) १०७

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥८॥

अन्वयार्थ—(कर्मस्वभावेन) कर्म रूप स्वभाव से (वृत्तं अस्ति) वर्तना है (तत्) वह (ज्ञानस्य भवनं) ज्ञान का होना (हि) निश्चय से (न) नहीं है (तत् कर्म) वह कर्म स्वभाव (द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्) आत्मा से भिन्न द्रव्य का स्वभाव होने से (मोक्षहेतुः) मोक्ष का कारण (न) नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप्)१०८

मोक्षहेतुतिरोधानाद्बन्धत्वात्स्वयमेव च।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥६॥

अन्वयार्थ—(मोक्षहेतुतिरोधानात्) मोक्ष के कारण को रोकने से (च) और (स्वयमेव) खुद (बंधत्वात्) बंधरूप होने से (मोक्ष हेतुतिरोधायिभावत्वात्) मोक्ष के कारणों को रोकने रूप स्वभाव वाला होने से (तत्) वह कर्म (निषिध्यते) निषेध किया जाता है ॥६॥

(शार्दूलविक्रीडित) १०६

संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैवमोक्षार्थिना।
सन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्यपापस्यवा
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवत्
नैष्कर्मप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयंधावति ॥१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(मोक्षार्थिना)मोक्ष के चाहने वालों को(इदं)यह(समस्तं-अपि कर्म)सम्पूर्णकर्म(सन्यस्तव्यम् एव)छोड़ना ही चाहिए(तत्र)उस कर्म के (संन्यस्ते सति) छोड़ने पर(पुण्यस्य) पुण्य की (वा)अथवा(पापस्यं) पापकी (किल) निश्चय से (का कथा) क्या कथा (भवेत्) हो सकती है (सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्) सम्यग्दर्शन आदि आत्म स्व-भाव होने से (मोक्षस्यहेतुः) मोक्ष का कारण (भवत्) होता हुआ (नैष्कमप्रतिवद्धं) कर्म रहित दशावान (उद्धतरसं) प्रगट रस वाला (ज्ञानं) ज्ञान (स्वयं धावति) स्वतः दौड़ आता है ॥१०॥

(शार्दूलविक्रीडित) ११०

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यग्न सा।
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः
क्त्वत्रापि समुल्लसत्य वशतो यत्कर्म वंधाय तत् ।
मोक्षायस्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः॥११

अन्वयार्थ—(यावत् पाकं) जब तक कर्म का उदय (उपैति) प्राप्त होता है (ज्ञानस्य) ज्ञान की (साकर्म विरतिः) वह कर्म शून्यता (सम्यङ्_न) सच्ची नहीं है (तावत्) तब तक (कर्मज्ञानसमुच्चयोपि) कर्म और ज्ञान का मेल भी (विहितः) कहा गया है (काचित्क्षतिः) इसमें कोई हानि (नास्ति) नहीं है (किन्तु) परन्तु (अत्रापि) यहां पर भी (अवशतः) आत्मा के वश के विना (यत्कर्म) जो कर्म (समुल्लसति) उदय को प्राप्त होता है (तत्) वह कर्म (वंधाय भवति) बंध के लिये होता है (स्वतः) स्वयं (विमुक्तं) छूटा हुआ (परमम्) श्रेष्ठ (एकं) एक (ज्ञानंएव) ज्ञान ही (मोक्षाय) मोक्ष के लिये (स्थितं)स्थित होता है॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीड़ित) १११

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्
मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदति स्वच्छंदमंदोद्यमाः
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च

अन्वयार्थ—(यत्) जो (कर्मनयावलम्बनपराः) कर्म नय के अवलम्बन में तत्पर हैं (ते मग्नाः) वे डूबे हुए हैं (ये ज्ञानं) जो ज्ञान को तो (न जानन्ति) नहीं जानते (ते ज्ञाननयैषिणाः अपि) वे ज्ञान नय के पक्षपाती होते हुए भी (मग्नाः) डूबे हुए हैं (यत्) जो (अतिस्वच्छंदमंदोद्यमाः) अत्यंत स्वच्छन्द हुए क्रियाकाण्ड में उद्यम नहीं करते वे भी डूबे हुए हैं (विश्वस्योपरि) विश्व के ऊपर (ते सततं) वे हमेशा (तरन्ति) तैरते हैं (ये स्वयं ज्ञानं भवन्तः) जो खुद ज्ञान रूप होते हुए (जातु) कभी भी (कर्म) कर्म को (न कुर्वन्ति) नहीं करते हैं (स्व) और (प्रमादस्य) प्रमाद के (वशं न यान्ति) वश को प्राप्त नहीं होते ॥१२॥

(मंदाक्रांता) ११२

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा वलेन
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि ।
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण।१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(पीतमोहं) पिया है मोह को जिसने (भ्रमरसभरात्) विपरीतता रूप रस के भार से (भेदोन्मादं) पुण्य और पाप रूप भेद के उन्माद को (नाटयत्) नचाने वाले (तत्सकलं अपि कर्म) उस सम्पूर्ण कर्म को (बलेन) बल पूर्वक (मूलोन्मूलंकृत्वा) जड़ से उखाड़ कर (हेलोन्मीलत्परमकलया) क्रीड़ा मात्र से प्रगट उत्कृष्ट कला के (सार्द्धम्) साथ (आरब्धकेलि) प्रारम्भ कर दिया है क्रीडा को जिसने (कवलित-तमः) एवं अज्ञान अंधकार को जिसने नाश कर दिया ऐसा (ज्ञानज्योतिः) ज्ञान रूपी महान तेज (भरेण प्रोज्जजृम्भे) अतिशय रूप से प्रगट हुआ ॥१३॥

॥ अथ आस्रवाधिकारः लिख्यते ॥

(द्रुतविलंवित) ११३

अथ महामदनिर्भरमन्थरं—
समररङ्गपरागतमास्रवं ।
अयमुदारगभीरमहोदयो—
जयतिदुर्ज्जयबोधधनुर्द्धरः ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके वाद (अयं) यह (उदारगंभीरमहोदयः) विशाल गंभीर और महान उदय वाला (दुर्ज्जयबोधधनुर्द्धरः) दुःख से जानने योग्य ज्ञान रूपी धनुर्धारी (महामदनिर्भरमन्थरं) महान अहंकार के भार से व्याप्त (समररंगपरागतं) युद्ध रूपी रंग भूमि में आये हुए (आस्रवं) आस्रव को (जयति) जीतता है ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शालिनी) ११४

भावोरागद्वेषमोहैर्विना यो—
जीवस्य स्याद् ज्ञाननिवृत्त एव।
रुन्धन्सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघा—
नेषो भावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(जीवस्य) जीव का (यः) जो (रागद्वेषमोहैः विना) राग-द्वेष और मोह के विना (ज्ञाननिर्वृत्तः) ज्ञान से रचा गया (भावः स्यात्) भाव होता है (एषः) यह (भावः एव) भाव ही (सर्वभावास्रवाणां) सम्पूर्ण भावास्रवों का (सर्वान्) सभी (द्रव्यकर्मास्रवौघान्) द्रव्य कर्मों के आस्रव रूप समूह को (रुन्धन्) रोकता हुआ (अभावः) अभाव रूप (स्यात्) होता है ॥२॥

(उपजाति) ११५

भावास्रवाभावमयंप्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥३॥

अन्वयार्थ—(भावास्रवाभावं) भावास्रव के अभाव को (प्रपन्नः) प्राप्त हुआ (अयं) यह (द्रव्यास्रवेभ्यः) द्रव्यास्रवों से (स्वतः एव भिन्नः) स्वयमेव भिन्न (अस्ति) है (सदा) निरन्तर (ज्ञानमयैकभावः) ज्ञान रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक भाववान (निरास्रवः) आस्रव रहित (ज्ञायकः) जानने वाला (ज्ञानी एकः एव अस्ति) ज्ञानी एक ही है ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित) ११६

सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयम्
वारंबारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ॥
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्यपूर्णोभवत् ।
नात्मानित्यनिरास्रवो भवतिहिज्ञानीयदास्यात्तदा४

अन्वयार्थ—(निजबुद्धिपूर्वं) अपनी बुद्धिपूर्वक (समग्रं) समस्त (रागं स्वयं) राग को खुद (अनिशं) निरंतर (सन्न्यस्यन्) हटाता हुआ (अबुद्धिपूर्वमपि) अबुद्धिपूर्वक ही (तं जेतुं) उस राग को जीतने के लिए (वारं वारं स्वशक्तिं) वार वार अपनी शक्ति को (स्पृशन्) स्पर्श करता हुआ (सकलां) समस्त (परवृत्तिं) पर परिणति को (उच्छिन्दन्) नाश करता हुआ (ज्ञानस्य पूर्णः) ज्ञान से पूर्ण [भवन्] होता हुआ (आत्मा यदा) आत्मा जब (नित्यनिरास्रवः) निरंतर आस्रव शून्य होता है (तदाहि) उस समय निश्चय से (ज्ञानीस्यात्) ज्ञानी होता है ॥४॥

(अनुष्टुप) ११७

सर्वस्यामेव जीवन्त्यां द्रव्यप्रत्ययसंततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेतिचेन्मतिः॥५॥

अन्वयार्थ—(सर्वस्यांएव) सभी (द्रव्यप्रत्ययसंततौ) द्रव्यास्रव की संतति के (जीवन्त्यां) जीते हुए (ज्ञानी) ज्ञानी (नित्यं एव) नित्य ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(निरास्रवः) आस्रव रहित (कुतः स्यात्) कैसे हो सकता है (इति) ऐसी (चेत्) यदि (मतिः अस्ति) बुद्धि है (तर्हि) तो ॥५॥

(मालिनी) ११८

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपिसकलरागद्वेषमोहव्युदासा—
दवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥६॥

अन्वयार्थ—(यद्यपि) यद्यपि (पूर्वबद्धाः) पहले अज्ञान अवस्था में बंध को प्राप्त हुए (द्रव्यरूपाः) द्रव्य रूप (प्रत्ययाः) आस्रव (समयं) अपनी कालकृत मर्यादा को (अनुसरन्तः) अनुसरण करते हुए (सत्तां) सत्ता को (हि) निश्चय से (न विजहति) नहीं छोड़ते (तदपि) तो भी (ज्ञानिनः) ज्ञानी के (कर्मबंधः) कर्मबंध (सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्) सम्पूर्ण रागद्वेष मोह के निराकरण करने से (जातु) कभी (न अवतरति) नहीं होता है ॥६॥

(अनुष्टुप) ११९

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसंभवः ।
तत एव न बंधोऽस्य ते हि बंधस्य कारणम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिस कारण (ज्ञानिनः) ज्ञानी के (रागद्वेषविमोहानां) रागद्वेषविमोहका (असंभवः) असंभव (अस्ति) है (ततः) इस कारण से (एव) ही (अस्य) इस ज्ञानी के (ते) वे राग द्वेष मोह (हि) निश्चय से (बंधस्य कारणं न संति) बंध का कारण नहीं होते ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वसंततिलका) १२०

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्ह—
मैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः—
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥८॥

अन्वयार्थ—(ये) जो ज्ञानी (शुद्धनयं) शुद्ध नय को (अध्यास्य) स्वीकार कर (सदैव) निरन्तर (उद्धतबोधचिन्हं) प्रगट हो गया है ज्ञान रूपी चिन्ह जिसका ऐसी (ऐकाग्र्य) एकाग्रता को (कलयन्ति) धारण करते हैं (तएव) वे ही (रागादिमुक्तमनसः) रागादि से शून्य चित्त वाले (भवन्तः) होते हुए (वंधविधुरं) बंध से रहित (समयस्य) समय के (सारं) सारको (सततं) हमेशा (पश्यन्ति) देखते हैं ॥८॥

(वसंततिलका) १२१

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु—
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबंधमिह विभ्रति पूर्ववद्ध—
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(ये) जो ज्ञानी (शुद्धनयतः) निश्चयनय अर्थात् शुद्धनय से (प्रच्युत्य) गिरकर अर्थात् छूटकर (विमुक्तबोधाः) ज्ञानशून्य होते हुए (पुनरेव) फिर से (रागादियोगं) रागादि के सम्बन्ध को (उपयान्ति) प्राप्त करते हैं (ते) वे (इह) इस लोक में (पूर्ववद्धद्रव्यास्रवैः) पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बांधे हुए द्रव्यास्रवों से (कृत विचित्रविकल्पजालम्) किया गया है विभिन्न प्रकार का विकल्प समूह जिसमें ऐसे (कर्मबंधम् बिभ्रति) कर्म बंध को धारण करते हैं ॥९॥

(अनुष्टुप) १२२

इदमेवात्र तात्पर्य्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति वन्धस्तदत्यागात्तत्यागाद्बन्ध एव हि॥१०

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से (शुद्धनयः) शुद्धनय (हेयः) छोड़ने योग्य (न अस्ति) नहीं है (इदं) यह (एव) हां (अत्र) यहां (तात्पर्यं अस्ति) अभिप्राय है (हि) क्योंकि (तदत्यागात्) उस शुद्धनय के नहीं छोड़ने से (वंधःनास्ति) कर्मबंध नहीं होता है (तत्त्यागात्) उस शुद्ध निश्चयनय के छोड़ने से (वंधः) वंध (अस्ति एव) होता ही है ॥१०॥

(शार्दूलविक्रीडित) १२३

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधेनिवध्नन्धृतिम्।
त्याज्यःशुद्धनयो न जातुकृतिभिःसर्वंकषःकर्मणाम्
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्वहिः।
पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः।११

अन्वयार्थ—(कृतिभिः) ज्ञानियों द्वारा (धीरोदारमहिम्नि) अविचल और विशाल है महिमा जिसको (अनादिनिधने) अनादि और अन्त रहित ऐसे (बोधे धृतिम्) ज्ञान में धैर्य को (निवध्नन्) वांधता हुआ (कर्मणां सर्वंकषः) कर्मों का समूल से नाश करने वाला (शुद्धनयः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धनय (जातु) कभी भी (त्याज्य:) छोड़ने योग्य (न अस्ति) नहीं है (तत्रस्था) उस अविनश्वर ज्ञान में रहने वाले ज्ञानी पुरुष (वहि: निर्यत्) वाह्यपदार्थों में घूमने वाले (स्वमरीचिचक्रं संहृत्य) अपने ज्ञान विशेष को समेट कर (पूर्णं अचलं) परिपूर्ण निश्चल (ज्ञानघनौघं एकं शान्तं) ज्ञानघन के समूह रूप एक शान्तरस रूपी (मह:) तेज को (अचिरात् पश्यन्ति) तत्काल देखते हैं ॥११॥

(मंदाक्रांता) १२४

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतंकिमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्त:
स्फारस्फारै: स्वरसविसरै: प्लावयत्सर्वभावा—
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत्।१२।

अन्वयार्थ—(रागादीनां आस्रवाणां झगिति) रागादि आस्रवों के शीघ्र ही (सर्वत:) सब तरफ से (विगमात्) दूर हो जाने के कारण (नित्योद्योतं) सर्वदा प्रकाशमान (किमपि परमं) किसी भी श्रेष्ठ (वस्तु) पदार्थ को (अन्त:) अन्तरंग में (सम्पश्यत:) देखने वाले ज्ञानी को (स्फारस्फारै:) अनंतानंत (स्वरसविसरै:) अपने चैतन्य रस के विस्तार से (सर्वभावाद् आलोकान्तात्) समस्त पदार्थों को लोक पर्यंत (प्लावयत्) प्रकाशित करता हुआ (अचलं अतुलं) अचल अनुपम (एतत् ज्ञानम् उन्मग्नम्) यह ज्ञान प्रगट हुआ है ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ अथ संवराधिकार लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १२५

आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रव
न्यक्कारात्प्रतिलब्धिनित्यविजयंसम्पादयत्संवरम्
व्यावृत्तंपररूपतोनियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुरत्
ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलंनिजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते

अन्वयार्थ—(आसंसारविरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्यक्कारात्) अनादि संसार से विरोध करने वाले संवर की जय से एकान्त रूप से मद को प्राप्त हुए आस्रव के तिरस्कार करने से (प्रतिलब्धनित्य विजयं) प्राप्त कर लिया है हमेशा की जीत को जिसने ऐसे (संवरं संपादयत्) संवर को प्राप्त कराता हुआ (पररूपतः व्यावृत्तं) पर द्रव्य से प्रथक (स्वरूपे) निजरूप में (सम्यक्) भले प्रकार से (नियमितं) निश्चित (उज्ज्वलं) निर्मल (निजरसप्राग्भारं) आत्मरस का है बोझ जिसमें ऐसे (चिन्मयं) चैतन्य स्वरूप (स्फुरज्ज्योतिः) स्फुरायमान प्रकाश (उज्जृम्भते) उदय को प्राप्त हो रहा है ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) १२६

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वाविभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ॥
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः ।
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुनासन्तोद्वितीयच्युताः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(चैद्रूप्यं) चेतनरूपता को (च) और (जड़रूपतां) अचेतनरूपता को (दधतोः) धारण करने वाले (द्वयोः) दोनो के (अंतः) अन्तरंग में (दारुणदारणेन) भयंकर विदारण से (परितः) सर्वथा (ज्ञानस्य) ज्ञान के (च) और (रागस्य विभागं) राग के विभाग को (कृत्वा) करके (निर्मलभेदज्ञानं) निर्मल भेद ज्ञान (उदेति) उदय को प्राप्त होता है (हे सन्ताः, हे सज्जनो (यूयं) तुम सब (द्वितीयच्च्युताः) पर पदार्थ से प्रथक हुए (अधुना) इस समय (एकं) अद्वितीय (शुद्धज्ञान घनौघम्) शुद्धज्ञान घन समूह रूप (इदं) इस भेद ज्ञान को (अध्यासिताः मोदध्वम्) प्राप्त हुए आनन्दित हो ॥२॥

(मालिनी) १२७

यदिकथमपि धारावाहिना बोधनेन ।
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ॥
तदयमुदयदात्माराममात्मानमात्मा ।
परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

अन्वयार्थ - (यदि) यदि (धारावाहिना बोधनेन) धारावाही ज्ञान से (कथमपि) किसी भी तरह (ध्रुवं) निश्चल (शुद्धं आत्मानं) शुद्ध आत्मा को (उपलभमानः) प्राप्त करता हुआ (आत्मा आस्ते आत्मा हो (तत्) तो (अयं आत्मा) यह आत्मा (आत्मारामम्) आत्मीक रमण को (उदयत्) प्रगट कराते हुए (परपरिणतिरोधात्) परपरिणति के निरोध से (शुद्धं आत्मानं एव अभ्युपैति) शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी) १२८

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या ।
भवतिनियतमेषां शुद्धतत्वोपलम्भः ॥
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां ।
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥४॥

अन्वयार्थ—(भेदविज्ञानशक्त्या) भेद विज्ञान की शक्ति से (निजमहिमरतानां) अपनी महिमा में लीन (एषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः) इन पुरुषों के शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति (नियतं) निश्चितरूप से (भवति) होती है (अखिलान्यद्रव्यदूरे) सम्पूर्ण अन्य द्रव्यों से प्रथक (स्थितानां) स्थित रहने वाले इन पुरुषों के (अचलितं भवति) निश्चलता होती है (तस्मिन् सति) उस निश्चलता के होने पर (कर्ममोक्षः अक्षयः भवति] कर्मों का विनाश अविनाशी होता है ॥४॥

(उपजाति) १२६

सम्पद्यतेसंवरएव साक्षात्—
शुद्धात्म तत्वस्यकिलोपलंभात् ।
सभेदविज्ञानत एव तस्मात्—
तद्भेदविज्ञानमतीवभाव्यम् ॥

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (शुद्धात्मतत्त्वस्य) शुद्ध आत्मतत्त्व के (उपलंभात्) प्राप्त होने से (साक्षात्) प्रगट रूप से (संवर:एव) संवर ही (सम्पद्यते) संपन्न होता है (सः) वह संवर (भेदविज्ञानतः) भेद विज्ञान से (एव भवति) ही होता है (तस्मात्) इस कारण से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(भेद विज्ञानम्) भेद विज्ञान (अतीव) अतिशय रूप से (भाव्यं) होना चाहिए अर्थात् भाना चाहिए ॥५॥

(अनुष्टुप) १३०

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञानेप्रतिष्ठते ॥६॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह (भेदविज्ञानं) भेद विज्ञान (अच्छिन्नधारया) निर्बाध धाराप्रवाह से (तावत्) तब तक (भावयेत्) भाना चाहिए (यावत्) जब तक (ज्ञानं) ज्ञान (परात्) पर पदार्थ से (च्युत्वा) हटकर (ज्ञाने) ज्ञान में (प्रतिष्ठते) स्थित हो ॥६॥

(अनुष्टुप) १३१

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धाः ये किल केचन ॥७॥

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (ये) जो (केचन) कोई (सिद्धाः) सिद्ध हुए हैं (ते भेदविज्ञानतः) वे भेद विज्ञान से (सिद्धाः) सिद्ध हुए हैं (किल) निश्चय से (ये) जो (केचन) कोई भी (बद्धाः) बंधे हैं (ते) वे (तस्य) उस भेद विज्ञान के (अभावतः) अभाव से (एव) ही (बद्धाः) बंधे हैं ॥७॥

(मंदाक्रान्ता) १३२

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्वोपलंभात् ।
रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभ्रत्तोषं परममलालोकमम्लानमेकं ।
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८॥

अन्वयार्थ—(भेदज्ञानोच्छलनकलनात्) भेद विज्ञान के प्रकाश को धारण करने से (शुद्धतत्त्वोपलंभात्) शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति से (रागग्रामप्रलयकरणात्) राग समुदाय के विनाश करने से (कर्मणां संवरेण) कर्मों के संवर से (परं) श्रेष्ठ (तोषं) संतोष को (विभृत्) धारण करता हुआ (अमलालोकं) निर्मल है आलोक जिसका (शाश्वतोद्योतम्) निरन्तर है प्रकाश जिसका (एवंभूतं) ऐसा (अम्लानं) उज्वल (एतत) यह (एकं ज्ञानं) एक ज्ञान (ज्ञाने) ज्ञान में (नियतं) निश्चित (उदितं) प्रगट हुआ है ॥८॥

॥७॥ अथ निर्जराधिकार लिख्यते ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १३३

रागाद्यास्रवरोधतोनिजधुरान्धृत्वापरः संवरः
कर्मागामिसमस्तमेवभरतो दूरान्निरुन्धन्स्थितः
प्राग्बद्धंतुतदेव दग्धमधुना व्याजृम्भतेनिर्जरा ।
ज्ञानज्योतिरपावृतं नहि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति

अन्वयार्थ—(परः) श्रेष्ठ (संवरः) संवर (रागाद्यास्रवरोधतः) राग आदि आस्रवों के निरोध से (निजधुरां) अपनी शक्ति को (धृत्वा) धारण-कर (आगामि) भविष्य में आने वाले (समस्तं) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म को (भरतः) अपनी शक्ति के द्वारा (दूरातएव) दूर से ही (निरुन्धन्) रोकता हुआ (स्थितः) स्थित (अस्ति) है (निर्जरा) निर्जरा (अधुना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस समय (प्राग्वद्धं) पूर्व में बांधे हुए (तदेव) उसी कर्म समूह को (दग्धं) नाश करने के लिए (व्याजृम्भते) तत्पर हो रही है (यतः) क्योंकि (रागादिभिः) रागद्वेषादि से (अपावृतं) प्रथक हुई (ज्ञानज्योति हि) ज्ञानरूपी ज्योति निश्चय से (रागादिभिः न मूर्च्छति) रागादिकों से लिप्त नहीं होती ॥१॥

(अनुष्टुप) १३४

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुंजानोऽपि न वध्यते।२

अन्वयार्थ—(किल) निश्चय से (यत्) जो (कर्म) कर्म को (भुँजानः) भोगता हुआ (अपि) भी (कर्मभिः) कर्मों से (न वध्यते) नहीं वंधता है (तत्) वह (ज्ञानस्यैव) ज्ञान की ही (वा) अथवा (विरागस्यैव) विरागता की ही (सामर्थ्यं अस्ति) शक्ति है ॥२॥

(रथोद्धता) १३५

नाश्नुते विषयसेवनेऽपियत्स्वं फलंविषयसेवनस्यना
ज्ञानवैभवविरागतावलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः

अन्वयार्थ—(यत्) जो (ना) मनुष्य (विषयसेवनेऽपि) विषयों के सेवन में लगा हुआ भी (विषयसेवनस्य) विषय सेवन के (स्वं) अपने (फलं) फलको (न अश्नुते) नहीं भोगता है (तत्) तो (असौ) वह (ज्ञानवैभवविरागतावलात्) ज्ञान के वैभव और विरागता के बल से (सेवकः अपि) विषयों का सेवक होता हुआ भी (असेवकः अस्ति) विषयों का सेवन करने वाला नहीं है ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मंदाक्रान्ता) १३६

सम्यग्दृष्टेर्भवतिनियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः ।
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ॥
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च ।
स्वस्मिन्नास्ते विरमतिपरात्सर्वतोरागयोगात् ।४।

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टेः) सम्यग्दृष्टि जीव के (नियतं) निश्चय से (ज्ञानवैराग्यशक्तिः) ज्ञान और विरागता की सामर्थ (भवति) होती है (यस्मात्) क्योंकि (अयं) यह सम्यग्दृष्टि (स्वं) अपने (वस्तुत्वम्) यथार्थ स्वरूप को (कलयितु) सम्पादन करने के लिए (स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या) अपने स्वरूप की प्राप्ति और पर रूप की मुक्ति से (इदं) इस (व्यतिकरं) भेद को (तत्त्वतः) परमार्थ से (स्वम्) अपने को (च) और (परं) परको (ज्ञात्वा) जानकर (स्वस्मिन्) निजमें (आस्ते) स्थित होता है (परात्) पर पदार्थ से (सर्वतः) सब तरह (रागयोगात्) राग के योग से (विरमति) विरक्त होता है अर्थात् प्रथक् होता है ॥४॥

(मंदाक्रांता) १३७

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बंतां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापा-
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्तिसम्यक्त्वरिक्ताः ।५

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (स्वयं) स्वतः (सम्यग्दृष्टिः अस्मि) सम्यग्दृष्टि हूँ (अयं बंधः) यह बंध (जातु) कभी भी (मे) मेरे (न स्यात्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हो सकता है (इति) इस प्रकार (उत्तानोत्पुलकवदनाः) अहंकार से उन्नत और रोमांचित हो गया है मुख और शरीर जिन्होंका ऐसे (ते) वे (रागिणः) रागीजन (अपि) भी (आचरन्तु) महाव्रतादि का पालन करें और (समितिपरतां) समितियों में तत्परता का (आलम्बंतां) आलम्बन करें (यतः) क्योंकि (पापा) पापी पुरुष (अद्यापि) आज भी (आत्मानात्मावगमविरहात्) चेतन और अचेतन के ज्ञान से शून्य होने से (सम्यक्त्वरिक्ताः सन्ति) सम्यग्दर्शन से शून्य हैं ॥५॥

(मंदाक्रान्ता) १३८

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः ।
सुप्तायस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः ॥
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ।५

अन्वयार्थ—(हे अन्धाः) हे अज्ञानियो (अमी) ये (रागिणः) रागी पुरुष (प्रतिपदं) पद पद पर (आसंसारात्) अनादि संसार से (यस्मिन्) जिस पद में (नित्यमत्ताः) हमेशा से उन्मत्त हैं और (सुप्ता) सोये हुए हैं (हि) निश्चय से (यूयं) तुम लोग (तत्) उस पद को (अपदं) अपद (अपदं) अपद (बुध्यध्वं) समझो (अतः) इसलिए (यूयं) तुम लोग (इदम् इदम्) इसी इसी (पदं) पदको (एत एत) प्राप्त करो प्राप्त करो (यत्र) जिस पद में (शुद्धः शुद्धः) शुद्ध शुद्ध (चैतम्य धातुः) चैतन्य द्रव्य (स्वरसभरतः) अपने रस के भार से (स्थायी भावत्वं एति) स्थिरता को प्राप्त करता है ॥६॥.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अनुष्टुप) १३९

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (पदं) पद (विपदां) विपत्तियों का (अपदं) पद नहीं (अस्ति) है (हि) निश्चय से (तत् एव) वह ही (एकं) एक पद (स्वाद्यं) स्वाद लेने योग्य है (यत्पुरः) जिसके सामने (अन्यानि पदानि) दूसरे पद (अपदानि एव भासन्ते) अपद रूप ही मालूम होते हैं ॥७॥

(शार्दूलविक्रीडित) १४०

एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादन्द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वांवस्तुवृत्तिंविदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशोभ्रस्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयत्किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकतां ।८

अन्वयार्थ—(अयं) यह (आत्मा) आत्मा (ज्ञायकभावनिर्भर महास्वादं) ज्ञायक भाव से परिपूर्ण महान् स्वाद वाले (एकं) एक अर्थात् असाधारण स्वाद को (समासादयन्) संपादन करता हुआ (स्वां) अपनी (वस्तुवृत्तिंविदन्) वस्तुस्थिति को जानता हुआ (द्वंद्वं) दो दो रूप के (विधातु असहः) करने में असमर्थ हैं (आत्मात्मानुभवानुभावविवशः) अपने आत्मानुभव के प्रभाव से पराधीन (एषः विशेषोदयं) यह आत्मा विशेष उदय को (भ्रस्यत्) गौण करने वाले और (सामान्यं) सामान्य उदय को (कलयत्) प्राप्त करने वाले (सकलं ज्ञानं एकतां किल नयति) समस्त ज्ञान की एकता को निश्चय से प्राप्त करता है ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडित) १४१

अच्छाच्छाःस्वयमुच्छलन्तियदिमाःसंवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्याभिन्नरसः स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवत् ।
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (इमाः) ये (अच्छाच्छाः) अतिनिर्मल (निष्पीताखिलभावमंडलरसप्राग्भारमत्ता इव) अतिशयरूप से सम्पूर्ण पदार्थ समुदाय के रस के अत्यन्त बोझ से मत्त हुए मानो (संवेदन-व्यक्तयः) अनुभव के भेद (स्वयं)स्वतः(उच्छलन्ति) उछलरहे हैं (यस्य) जिसका (अभिन्नरसः) अभिन्न रस रूप (सः) वह (एषः)यह(भगवान्) भगवान (एकः अपि) एक होता हुआ भी (अनेकी) अनेक (भवत्) होता हुआ (अद्भुतनिधिः) विचित्र हैं निधियां जिसमें ऐसा (चैतन्य-रत्नाकरः) चैतन्यरूपी समुद्र [उत्कलिकाभिः] उठती हुई तरङ्गों से (वल्गति) उछल रहा है ॥९॥

(शार्दूलविक्रीड़ित) १४२

क्लिश्यन्तां स्वयमेवदुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैःकर्मभिः
क्लिश्यन्तांचपरे महाव्रततपो भारेणभग्नाश्चिरं ।
साक्षान्मोक्षइदंनिरामयपदंसंवेद्यमानंस्वयम्
ज्ञान ज्ञानगुणं विना कथमपिप्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥

अन्वयार्थ—(केऽपि) कोई भी (दुष्करतरैः) अति कठिन (मोक्षो-न्मुखैः) मोक्ष से विमुख (कर्मभिः) कर्मों से अर्थात् क्रियाओं से (स्वयमेव)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुद ही (क्लिश्यंतां) क्लेश को प्राप्त करें (परे) दूसरे (महाव्रततपोभारेण) महाव्रतों के और तपश्चरण के भार से (चिरं) चिरकाल तक (भग्नाः) पीड़ित हुए (क्लिश्यंतां) दुखी हों (इदं) यह (निरामयपदं) व्याधि रहित स्थान (स्वयं संवेद्यमानं) खुद अनुभव में आ रहा (ज्ञानं साक्षात् मोक्षः अस्ति) ज्ञान साक्षात् मोक्ष है (ज्ञानगुणं विना) ज्ञान गुण के बिना (ज्ञानं) ज्ञान को (प्राप्तुं) प्राप्त करने के लिए (हि) निश्चय से (कथमपि) किसी भी प्रकार से (न क्षमन्ते) समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १० ॥

(द्रुतविलंबित) १४३

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं—
सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्—
कलयितुं युततां सतत जगत् ॥११॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह (पदं) ज्ञानरूप पद (ननु) निश्चय से (कर्मदुरासदं) कर्मों के द्वारा दुर्लभ है (किल सहजबोधकलासुलभं) किन्तु स्वाभाविक ज्ञानरूप कला से सुलभ है (तत इदं निजबोधकलाबलात्) इसलिए इस आत्मज्ञान को अपनी ज्ञानरूप कला के बल से (कलयितुं जगत् सततं युततां) प्राप्त करने के लिए संसार निरन्तर यत्न करे ॥११॥

(उपजाति) १४४

अचिन्त्यशक्तिःस्वयमेवदेव—
श्चिन्मात्रचिंतामणिरेव यस्मात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते—
ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(यस्मात् अचिन्त्यशक्तिः) जिस कारण से अचिंतनीय है सामर्थ्य जिसकी ऐसा (चिन्मात्रचिंतामणिः) चैतन्यस्वरूप चिंतामणि (एव) ही (स्वयमेव) खुद ही (देवः अस्ति) देव है (ज्ञानी सर्वार्थ-सिद्धात्मतया) ज्ञानी सम्पूर्ण प्रयोजनों के सिद्धरूप हो जाने से (अन्यस्य-परिग्रहेण किं विधत्ते) परपदार्थ के ग्रहण करने से क्या करेगा अर्थात् कुछ भी नहीं ॥१२॥

(वसन्ततिलका) १४५

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव—
सामान्यतःस्वपरयोरविवेकहेतुं ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुनाविशेषा—
द्भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(इत्थं सामान्यतः) इस प्रकार सामान्यरूप से (समस्तं-एव परिग्रहम् अपास्य) सबही परिग्रह को छोड़ कर (स्वपरयोः अविवेकहेतुं) अपने और परके अज्ञान के हेतु (अज्ञानं उज्झितुमना) अज्ञान को छोड़ने का है चित्त जिसका ऐसा (अयं) यह ज्ञानी (अधुना विशेषात्) इस समय विशेषरूप से (भूयः त एव परिहर्तुम् प्रवृत्तः) फिर उसी ही परिग्रह को छोड़ने के लिए तत्पर हुआ है ॥१३॥

(स्वागता) १४६

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकाद्—
ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्भवत्वथ च रागवियोगा—
न्नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः यदि) ज्ञानी के यदि (पूर्वबद्धनिजकर्म-विपाकात्) पूर्व के बंधे हुए अपने कर्मों के फल से (उपभोगः भवति) उपभोग होता है (तर्हि तत् भवतु) तो वह हो (रागवियोगात् नूनं) राग के वियोग से निश्चय से वह उपभोग (परिग्रहभावं न ऐति, परिग्रह-पने को नहीं प्राप्त होता है ॥१४॥

(स्वागता) १४७

वेद्यवेदकविभावचलत्वा—
द्वेद्यते न खलु कांक्षितमेव ।
तेन कांक्षति न किंचन विद्वान्—
सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

अन्वयार्थ—(वेद्यवेदकविभावचलत्वात्) वेद्य और वेदक विकारी भाव चंचल होने से (खलु विद्वान् कांक्षितं एव) निश्चय से ज्ञानी पुरुष इच्छित वस्तु को ही (न वेद्यते) नहीं जानता है (तेन किंचन न कांक्षति) तिस कारण से किसी भी वस्तु को नहीं चाहता (सर्वतः अपि सब तरह से भी (अतिविरक्तिं उपैति) अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त करता है ॥१५

[स्वागता] १४८

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं—
कर्मरागरसरिक्ततयैति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे—
स्वीकृतैव हि वहिर्लुठतीह ॥१६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः कर्म) ज्ञानी की क्रिया (रागरसरिक्ततया) रागरूपी रस से रहित होने के कारण (परिग्रहभावं न एति) परिग्रहपने को नहीं प्राप्त करती है (रंगयुक्तिः) राग की योजना अर्थात् सम्बन्ध (अकषायितवस्त्रे स्वीकृता) कषायले पने से रहित वस्त्र में (हि) निश्चय से (इह) वस्त्र में (वहिः एव) बाहर ही (लुठति) लोटती है ॥

ज्ञानवान्स्वरसतोऽपियतःस्या—
त्सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकल कर्मभिरेषः—
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१७॥

अन्वयार्थ—(यतः ज्ञानवान्) जिस कारण से ज्ञानवान (स्वरसतः अपि) आत्मिकरस से भी (सर्वरागरसवर्जनशीलः) समस्त रागरूपी रससे रहित स्वभाववान (अस्ति) है (ततः) इस कारण से (एषः) यह ज्ञानी (कर्ममध्यपतितः अपि) कर्म के मध्य में पड़ा हुआ भी (सकलकर्मभिः न लिप्यते) समस्त कर्मों से लिप्त नहीं होता है ॥१७॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५०

यादृक्तादृगिहास्तितस्यवशतोयस्यस्वभावोहियः
कर्तुं नैष कथंचनापि हिपरैरन्यादृशःशक्यते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेत्ज्ञानं भवेत्संततम्
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्वपरापराधजनितो नास्तीहबंधस्तव।

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (यस्य) जिस वस्तु की (वशतः) अधीनता से (यः) जो (यादृक् स्वभावः अस्ति) जैसा स्वभाव है (तस्य स्वभावः) उस वस्तु का स्वभाव (तादृक्) वैसा ही है (हि) निश्चय से (परैः) दूसरों के द्वारा (एषः) यह स्वभाव (अन्यादृशः) अन्य प्रकार का (कथंचन अपि कर्तुं न शक्यते) किसी भी तरह से करने में समर्थ नहीं है (हि अज्ञानं कदाचन अपि) निश्चय से अज्ञान किसी भी तरह से (ज्ञानं न भवेत्) ज्ञान नहीं हो सकता (हे ज्ञानिन्) हे ज्ञानी पुरुष (त्वम्) तू (संततम् भवत्) निरंतर विद्यमान (ज्ञानं भुंक्ष्व) ज्ञान का आस्वादन कर (इह) इस लोक में (तव) तेरे (परापराधजनितः) परके अपराध से पैदा हुआ (वंधः नास्ति) बंध नहीं है ॥ १८ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५१

ज्ञानिन्कर्मनजातुकर्तुमुचितंकिंचित्तथाप्युच्यते
भुङ्क्षेहन्तनजातु मे यदि परं दुर्भुक्तएवासिभोः
वंधःस्यादुपभोगतोयदि नतत्किंकामचारोऽस्तिते
ज्ञानसन्बसवन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥

अन्वयार्थ—(हे ज्ञानिन्) हे ज्ञानी (जातु) कभी भी (त्वया कर्म कर्तुं) तेरे द्वारा कर्म करना (उचितं न अस्ति) योग्य नहीं है (तथापि त्वया) तो भी तेरे द्वारा (उच्यते) कहा जाता है (यत् अहं किंचित् भुङ्क्ते) कि मैं कुछ भोगता हूँ (मे परं जातु न) मेरे पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु कदाचित नहीं है (हन्त यदि) खेद है यदि (ते परं नास्ति) तेरे पर वस्तु नहीं है (तर्हि भोः) तो हे ज्ञानी (त्वं) तू (दुर्भुक्त एव असि) दुर आहारी ही है (यदि) यदि (उपभोगतः ते बंधः न स्यात्) पर द्रव्य के उपभोग से तेरे बंध नहीं है (तत्) तो (ते कामचारः किं अस्ति) तेरे इच्छानुसार भोग क्यों हैं (त्वं ज्ञानं सन् वस) तू ज्ञानरूप होता हुआ आत्म स्वरूप में निवास कर (अपरथा स्वस्य अपराधात् ध्रुवं बंध एषि) अन्यथा अपने अपराध से निश्चित बंध को प्राप्त होगा ॥ १६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५२

कर्तारंस्वफलेनयत्किलबलात्कर्मैवनोयोजयेत्
कुर्वाणःफललिप्सुरेवहिफलंप्राप्नोतियत्कर्मणः
ज्ञानंसंस्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपिहिकर्मतत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः॥

अन्वयार्थ—(किल कर्म एव) निश्चय से कर्म ही (यत्) जिस कारण से (स्वफलेन कर्तारं) अपने फल के साथ कर्ता को (बलात् नो योजयेत) बल पूर्वक युक्त नहीं करता है और (यत् कुर्वाणः फल-लिप्सुः) जिस कारण से कर्म को कर्ता हुआ फल को चाहने वाला (एव) ही (हि) निश्चय से (कर्मणः फलं प्राप्नोति) कर्म के फल को प्राप्त करता है (तत्) इसलिये (अपास्तरागरचनः) छोड़ दिया है राग की रचना को जिसने ऐसा (ज्ञानं भवत्) ज्ञानरूप होता हुआ और (कर्म कुर्वाणःअपि) कर्म को कर्ता हुआ भी (तत्फलपरित्यागैक-शीलः) उस कर्म के फल को छोड़ने का है एक स्वभाव जिसका ऐसा (मुनिः कर्मणा नो बध्यते) मुनि कर्म से नहीं बंधता है ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडित) १५३

त्यक्तं येनफलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपितत्कर्मावशेनापतेत्
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावेस्थितो
ज्ञानीकिं कुरुतेऽथकिं न कुरुते कर्मेति जानाति कः

अन्वयर्थ—(येन फलं त्यक्तं) जिसने कर्म फल को छोड़ दिया है और (कर्म) कर्म को (कुरुते) करता है (इति) ऐसी बातका (वयं न प्रतीमाः) हम विश्वास नहीं करते (किन्तु) परन्तु (अस्य) इस के (कुतः) कहीं से (किंचित् अपि कर्मावशेन) कुछ भी कर्म के वश के विना (तत् अपतेत्) वह कर्म उपस्थित हुआ है (तस्मिन्-आपतिते) उस कर्म के उपस्थित होने पर (ज्ञानी) वह ज्ञानी (अकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितः) निश्चल श्रेष्ठ ज्ञान रूप स्वभाव में स्थित हुआ (अथ) इसके बाद (किं कर्म कुरुते) किस कर्म को करता है (किं न कुरुते) किस कर्म को नहीं करता है (इति कः जानाति) इस बात को कौन जान सकता है ॥ २१ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५४

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शंकां विहाय स्वयं
जानन्तःस्वमवध्यवोधवपुषं वोधाच्च्यवंते न हि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टयः एव) सम्यग्दृष्टि ही (इदं साहसं कर्तुं) इस साहस को करने में (परं क्षमन्ते) अतिशय रूप से ही समर्थ होते हैं (यत् भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि) जो भय से चंचल तीनों लोक के जीवों से छोड़ दिया गया है मार्ग जिसका ऐसे (वज्रे पतति) वज्र के गिरने पर (अपि) भी (अमीएव) ये सम्यग्दृष्टि जीव ही (निसर्गनिर्भयतया) स्वाभाविक निर्भीकता से (सर्वां शंकां विहाय) सारी शंका को छोड़ कर (स्वयं अबध्यबोधवपुषं) खुद बाधा रहित ज्ञानरूप शरीरवान (स्वं जानंतः) अपनी आत्मा को जानते हुए (हि) निश्चय कर (बोधात् नच्यवन्ते) ज्ञान से चलायमान नहीं होते ॥ २२ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५५

लोकःशाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मनः
चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः
लोकोयन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीःकुतो
निःशंकःसततंस्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति २३

अन्वयार्थ—(एषः लोकः) यह चैतन्यरूप लोक (एकः शाश्वतः सकलव्यक्तः) एक नित्य समस्त पदार्थों में प्रगट है और (विविक्तात्मनः चिल्लोकं) प्रथक आत्मा के चैतन्य प्रकाश को (स्वयमेव अयं एककः) स्वयं ही यह अकेला (लोकयति) अवलोकन करता है (अयं लोकः तव अस्ति) यह चैतन्य लोक तेरा है (अपरः लोकः तव नास्ति) दूसरा लोक तेरा नहीं है (परः अस्ति) पर है (तस्य तत् भीः कुतः भवेत) इस जीव के इस कारण से भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (सः सततं निःशंकं) वह निरंतर शंका रहित (सहजं ज्ञानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदा स्वयंविन्दति) स्वभाविक ज्ञान को हमेशा स्वयमेव ही प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५६

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकःसततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति

अन्वयार्थ—(ज्ञानिनः) ज्ञानी के (हि) निश्चय से (एषा) यह (एका एव) एक ही (वेदना अस्ति) वेदना है (यत्) जो कि (निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलात्) अभिन्नरूप से उदित हुए वेद्य वेदक के बल से (अनाकुलैः सदा एकं अचलं) आकुलता रहित ज्ञानियों के द्वारा हमेशा एक निश्चल (ज्ञानं स्वयं वेद्यते) ज्ञान खुद ही जाना जाता है (अन्यागतवेदना हि न भवेत्) दूसरों के द्वारा आई हुई वेदना निश्चय से नहीं होती है (तत् ज्ञानिनः भीः कुतः भवेत्) इस कारण ज्ञानी के भय कैसे हो सकता है (सः सततं) वह ज्ञानी निरंतर (निः-शंकः स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति) शंका रहित खुद स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

(शार्दूल विक्रीडित) १५७

यत्सन्नाशमुपैति तन्ननियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किलततस्त्रातंकिमस्यापरैः
अस्यात्राणमतो न किंचनभवेत्तद्भीः कुतोज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं ससहजं ज्ञानं सदाविन्दति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(यत्) जो वस्तु (सत) सत्रूप है (तत्) वह वस्तु (नाशं न उपैति) नाश को प्राप्त नहीं होती (इति वस्तुस्थितिः) ऐसी पदार्थ की मर्यादा (नियतंव्यक्ता) नियम से स्पष्ट है (ज्ञानं स्वयमेवसत) ज्ञान स्वयं ही सत्रूप है (किल) निश्चय से (अस्य) इसका (तत्) वह ज्ञान (अपरः) दूसरो से (त्रातं) रक्षित (किं) कैसे हो सकता है (ततः अस्य अत्राणं किंचन न) इसलिये इस ज्ञान का अरक्षारूप कुछ भी नहीं है (अतः ज्ञानिनः तद्भः कुतः भवेत्) इसलिये ज्ञानी के वह अरक्षक भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (सः सततं निःशंकः सन्स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति) वह ज्ञानी निरंतर निशंक होता हुआ अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २५ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५८

स्वं रूपं किल वस्तुनोस्तिपरमागुप्तिः स्वरूपेणयत्
शक्तःकोऽपि परःप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानंस्वरूपं च नुः
अस्यागुप्तिरतो न काचनभवेत्तद्भीःकुतोज्ञानिनो
निःशंकःसततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति२६

अन्वयार्थ—(वस्तुनः स्वं रूपं किल परमागुप्तिः अस्ति) वस्तु का निज रूप ही श्रेष्ठ गुप्ति है (स्वरूपेपरः कोऽपि प्रवेष्टु शक्तःन भवेत्) वस्तु के निजरूप में दूसरा कोई भी प्रवेश करने में समर्थ नहीं हो सकता (यत) क्योंकि (अकृतं) स्वाभाविक (ज्ञानं) ज्ञान (नुः) आत्मा का (स्वरूपं अस्ति) निजरूप है (अतःअस्य अगुप्तिः काचन नास्ति) इसलिये इस वस्तु की अरक्षा कोई भी नहीं है (अतः ज्ञानिनः तद्भीः) इसलिये ज्ञानी के उस अगुप्ति का भय (कुतःभवेत) कैसे हो सकता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् नहीं हो सकता (सः) वह ज्ञानी (निःशंकः सन् सततं स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विंदति) निशंक होता हुआ निरंतर अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५६

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाःकिलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेवशाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं नकिंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं ससहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥

अन्वयार्थ—(ये) जो मनुष्य (प्राणोच्छेदं मरणं उदाहरन्ति) प्राणों के विनाश को मरण कहते हैं (अस्य आत्मनः प्राणाः किल ज्ञानं) इस आत्मा के प्राण तो निश्चय से ज्ञान है (तत्) वह ज्ञान (स्वयमेव शाश्वततया जातुचित् नोच्छिद्यते) स्वयं ही नित्य होने से कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है (अतः तस्य मरणंकिंचन न) इसलिये उस आत्मा का मरण कुछ भी नहीं है (अतः) इसलिए (ज्ञानिनः तद्भीः कुतो भवेत्) ज्ञानी के उस मरण का भय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (सः निःशंकः सन् सततं स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति) वह ज्ञानी निशंक होता हुआ निरंतर अपने स्वभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ।

(शार्दूलविक्रीडित) १६०

एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तन्नाकस्मिकमत्रकिंचनभवेत्तद्भीःकुतोज्ञानिनो
निःशङ्कःसततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति२८

अन्वयार्थ—(ज्ञानं एकं) ज्ञान एक है (अनाद्यनन्तं अचलं) अनादि है अनंत है और अचल है (किल) निश्चय से (एतत्स्वतः-सिद्धं) यह बात स्वयमेव सिद्ध है इसलिये (यावत्) जबतक (इदं) यह ज्ञान है (तावत्) तबतक (इदं) यह ज्ञान (सदैव) निरंतर ही (हि) निश्चय से (भवेत्) रहता है (अत्र) इस ज्ञान में (द्वितीयोदयः) दूसरे पदार्थ का उदय (न भवेत्) नहीं हो सकता (तत्) इसलिये (अत्र) इस ज्ञान में (आकस्मिकं किंचन न भवेत्) अकस्मात् होने वाला कुछ भी नहीं हो सकता इसलिये (ज्ञानिनः तद्भीः कुतः भवेत्) ज्ञानी के उस ज्ञान का भय कैसे हो सकता अर्थात् नहीं हो सकता (सः सततं निःशंकः सन् स्वयं सहजं ज्ञानं सदा विन्दति) वह ज्ञानी निरंतर निःशंक होता हुआ अपने स्वभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

(मंदाक्रान्ता) १६१

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः ।
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ॥
तत्तस्यास्मिन् पुनरपि मनाक् कर्मणो नास्ति बंधः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥२६॥

अन्वयार्थ—(टंकोत्कीर्णस्वरसनिचित ानसर्वस्वभाजः) टंकोत्कीर्ण निजरस से व्याप्त ज्ञान रूप सर्वस्व को भोगने वाले (सम्यग्दृष्टेः यत्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि के जो (लक्षमाणि) निःशंकितादि चिन्ह (भवन्ति) होते हैं वे (इह) इस लोक में (सकलं कर्म घ्नन्ति) समस्त कर्म को नाश करते हैं (तत्तस्य अस्मिन्) इसलिए उस सम्यग्दृष्टि के इस लोक में (पुनः मनागपि) फिर थोड़ा भी (कर्मणः बंधःनास्ति) कर्म का बंध नहीं होता (तदनुभवतः पूर्वोपात्तं) उस बंधभाव के अनुभव से पूर्व में संचित हुए कर्म (निश्चितं निर्जरा एव निश्चित रूप से निर्जीर्ण हो जाते हैं ॥२६

(मंदाक्रान्ता) १६२

रुन्धन्बन्धं नवमितिनिजैःसंगतोष्टाभिरंगैः ।
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन्निर्जरोज्जृम्भणेन ॥
सम्यग्दृष्टिःस्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं ।
ज्ञानंभूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥३०

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टिः) सम्यग्दृष्टि जीव (स्वयं अतिरसात्) स्वतः अतिशयरूप से। आदिमध्यान्तमुक्तं) आदि मध्य और अंत से रहित (ज्ञानं भूत्वा) ज्ञान रूप होकर (निजैः अष्टाभिः अंगैः) अपने आठों अंगों से (संगतः सन्) सहित होता हुआ (इति) इस तरह से (नवम् वंधं रुन्धन्) नवीन बंध को रोकता हुआ (तु) और (निर्जरो-ज्जृम्भणेन) निर्जरा की वृद्धि से (प्राग्बद्धं क्षयं.उपनयन्) पूर्व में बांधे गये कर्मों के क्षय को प्राप्त करता हुआ (गगनाभोगरंगं) आकाश के मध्य भाग रूप रंग भूमि में (विगाह्य नटति) प्रवेश करके नाचता है ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥८॥ अथ वंधाधिकारः प्रारभ्यते ॥

(शार्दूलविक्रीड़ित) १६३

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वाप्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तंरसभारनिर्भरमहा नाट्येन वंधंधुनत्
आनंदामृतनित्यभोजि सहजावस्थांस्फुटन्नाटयत्
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति॥१

अन्वयार्थ—(रागोद्गारमहारसेन) राग के उदय रूप महान् रस से (सकलं जगत्प्रमत्तं कृत्वा) सम्पूर्ण जगत को प्रमादी करके (रसभार-निर्भरमहानाट्येन) रस के भार से भरे हुए महान नृत्य से (क्रीडन्तं) क्रीड़ा करने वाले (वंधंधुनत्) वंध को कंपाता हुआ (आनंदामृतनित्य-भोजि) आनन्दरूपी अमृत का निरंतर आहार करने वाला (सहजावस्थां स्फुटं नाटयत्) अपनी स्वाभाविक अवस्था को स्पष्टरूप से नचाता हुआ (धीरोदारं अनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति) धीर और उदार आकुलतारहित और परिग्रह रहित ज्ञान उदय को प्राप्त होता है ॥१॥

(पृथ्वी) १६४

न कर्मवहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा।
ननैककरणाणिं वा न चिदचिद्वधो वंधकृत्॥
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः।
स एवकिल केवलं भवति वंधहेतुर्नृणाम्॥२॥

अन्वयार्थ—(कर्मवहुलं) कर्मरूप पुद्गलों से भरा हुआ (जगत् वंधहेतुःनास्ति) लोक वंध का कारण नहीं है (चलनात्मकं कर्मवंधहेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नास्ति) मन वचन काय की परिस्पंदनरूपक्रिया वंध का कारण नहीं है (वानैककरणानि बन्धहेतुः न) और अनेक करण अर्थात् इन्द्रियां वंध का कारण नहीं हैं (चित् अचित् वधः वंधकृत्नास्ति) चेतन और अचेतन का घात वंध को करने वाला नहीं है (यत्) किन्तु (यः) जो (उपयोगभूः रागादिभिः ऐक्यं समुपगाति) ज्ञान स्वरूप आत्मा रागद्वेषादि के साथ एकता को प्राप्त होता है (किल स एव केवलं नृणां वंधहेतुः भवति) निश्चय से वही आत्मा ही सिर्फ मनुष्यों के वंध का कारण है ॥२॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६५

लोकःकर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु चपरिस्पन्दात्मकंकर्मत-
त्तान्यस्मिन्करणानिसंतुचिदचिद्व्यापादनंचास्तुतत्
रागादीनुपयोगभूमिमनयद् ज्ञानं भवत् केवलं
वंधंनैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्माध्रुवं ॥३

अन्वयार्थ—(ततः लोकः कर्म) इसलिये लोक कार्मण्य वर्गणाओं से भरा हुआ (अस्तु) रहो (परिस्पन्दात्मकं सः अस्तु) मन वचन काय का हलन चलन रूप वह योग रहो (तत्कर्म अस्तु) वह क्रिया भी रहो (तानिकरणानि सन्तु) वे करण भी रहें (च) और (तत् चिद् अचिद् व्यापादनं) वह चेतन और अचेतन का घात भी (अस्मिन् अस्तु) इसमें रहो (अयं सम्यग्दृगात्मा रागादीन् उपयोगभूमिं अनयत्) यह सम्यग्दृष्टि जीव राग द्वेष आदि को आत्मा में नहीं प्राप्त करता हुआ (केवलं ज्ञानं भवत) सिर्फ ज्ञानरूप होता हुआ (कुतः अपि वन्धं ध्रुवं न उपैति) किसी भी तरह से वंध को निश्चय से नहीं करता (अहो) यही आश्चर्य है ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पृथ्वी) १६६

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां ।
तदायतनमेव सा किलनिरर्गला व्यावृत्तिः ॥
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां ।
द्वयं न हि विरुध्यतेकिमु करोति जानाति च ।४।

अन्वयार्थ - (तथापि) अर्थात् लोक आदि कारणों से बंध नहीं होता किन्तु रागादिरूप विभाव भावों से ही बन्ध होता है तो भी (ज्ञानिनां निरर्गलं चरितुं न इष्यते) ज्ञानियों को स्वछन्द आचरण करना योग्य नहीं है (किल) निश्चय से (सानिरर्गला व्यावृत्तिः तदायतनं एव) वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति बंध का ही कारण है (ज्ञानिनां अकामकृतकर्म अकारणं मतं) ज्ञानियों के विना इच्छा से किया गया कार्य बंध का अकारण माना गया है (हि) निश्चय से (तत्) ये (द्वयं) दोनों (जानाति च करोति) जानते भी हैं और करते भी है (किमु) क्या ये दोनों क्रियायें (न विरुध्यते) विरोध को प्राप्त नहीं होतीं अर्थात् होती ही हैं ॥४॥

(वसन्ततिलका) १६७

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु ।
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः ॥
रागं त्ववोधमयमध्यवसायमाहु—
र्मिथ्यादृशः स नियतं स च वन्धहेतुः ॥५॥

अन्वयार्थ—(यः जानाति) जो जानता है (सः करोति न) वह करता नहीं है (यः करोति सः जानातिन) जो करता है वह जानता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है (खलु) निश्चय से (अयं कर्मरागः) यह कर्म का राग है (रागंतु अवोधमयं अध्यवसायं आहुः) रागको तो अज्ञानरूप अध्यवसाय कहते हैं (सः) वह अध्यवसाय (मिथ्यादृशः) मिथ्यादृष्टि जीव के (नियतं) नियम से (वंधहेतुः) वंध का कारण है ॥५॥

(वसंततिलका) १६८

सर्वं सदैवनियतं भवति स्वकीय—
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य ।
कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(इह मरणजीवितदुःखसौख्यम्) इस लोक में मरण जीवन दुःख और सुख (सर्वं सदैव स्वकीयकर्मोदयात्) सभी हमेशा अपने कर्म के उदय से ही (नियतं भवति) नियम से होते हैं (यत्तु) जो लोग यह कहते हैं कि (परः पुमान् परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्) दूसरे मनुष्य दूसरेके मरण जीवन दुःख और सुख को वह करता है (एतत् अज्ञानं अस्ति) यह अज्ञान है ॥६॥

(वसंततिलका) १६९

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य ।
पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥
कर्माण्यहं कृतिरसेनचिकीर्षवस्ते ।
मिथ्यादृशो नियतमात्महतो भवन्ति ॥७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(ये परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यम्) जो पर के मरण जीवन दुःख और सुख को (परात् पश्यन्ति) पर से किया हुआ देखते हैं (एतत् अज्ञानं अधिगम्य) इस अज्ञान को प्राप्त कर (अहंकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षवः) अहंकाररूप रस से मरण को दुःख को और सुख को करने की इच्छा करने वाले (ते मिथ्यादृशाः नियतं आत्महतो भवन्ति) वे मिथ्यादृष्टि जीव नियम से अपनी आत्माका घात करने वाले होते हैं ॥७॥

(अनुष्टुप) १७०

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य वंधहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्मास्य दृश्यते ॥८॥

अन्वयार्थ—(अस्य मिथ्यादृष्टेः विपर्ययात्) इस मिथ्यादृष्टि का विपरीतता से (स एव) वह अध्यवसाय ही (वंधहेतुः) वंध का कारण है (अस्य) इस मिथ्यादृष्टि का (सः अयं अध्यवसायः) वह यह अध्यवसाय विपरीतता होने से (अज्ञानात्मा) अज्ञानरूप (एव दृश्यते) ही देखा जाता है ॥८॥

(अनुष्टुप) १७१

अनेनाध्यवसायेन निःफलेन विमोहितः ।
तत्किंचनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मानं करोतियत्

अन्वयार्थ—(आत्मा) आत्मा (निःफलेन) निरर्थक (अनेन अध्यवसायेन विमोहितः) इस अध्यवसाय से व्यामोह को प्राप्त हुआ (तत्किंचनअपि) वह कोई भी वस्तु (नैवाऽस्ति) नहीं है (यत आत्मानं न करोति) जिसको अपने रूप नहीं करता अर्थात् सब को अपने रूप कर लेता है ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इद्रवज्रा) १६२

विश्वाद्विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा—
दात्मानमात्माविदधाति विश्वम्।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एष—
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१०॥

अन्वयार्थ—(यत्प्रभावात् विश्वात् विभक्तः अपि) जिसके प्रभाव से विश्व प्रथक होता हुआ भी (आत्मा विश्वं आत्मानं विदधाति) आत्मा विश्वरूप अपने को करता है (हि एषः मोहैककंदः) निश्चय से यह मोह ही है एक कारण जिसका ऐसा (अध्यवसायः इह येषां नास्ति) अध्यवसाय इस लोक में जिनके नहीं है (ते एव यतयः सन्ति) वे ही मुनि हैं ॥१०॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६३

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः।
तन्मन्येव्यवहारएव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमीनिःकम्पमाक्रम्य किं।
शुद्धज्ञानघनेमहिम्नि न निजे वध्नन्तिसंतोधृतिम्॥

अन्वयार्थ—(जिनैः सर्वत्र अखिलं अध्यवसानं त्याज्यं उक्तं) जिनेन्द्र भगवान् ने जो सभी वस्तुओं में सम्पूर्ण अध्यवसान को त्यागने योग्य कहा है (तत् अहं अन्याश्रयः निखिलोऽपि व्यवहारः एव) उसमें पराश्रित रूप जान समस्त व्यवहार ही को (त्याजितः) छुडाया है (एवं मन्ये) इस प्रकार मानता हूं (तत् अमी सन्तः एकं सम्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्निश्चयं) तो ये सज्जन पुरुष एक समीचीन निश्चय को (एव निष्कम्पम् आक्रम्य शुद्धज्ञानघने निजेमहिम्नि) ही निश्चलरूप से प्राप्त करके निर्मल ज्ञान घनरूप अपनी महिमा में (धृतिम् किं न बध्नन्ति) स्थिरता को क्यों नहीं बांधते यही आश्चर्य है ॥११॥

(उपजाति) १७४

रागादयो बंधनिदानमुक्ता—
स्ते शुद्धचिन्मात्र महोऽतिरिक्ताः ।
आत्मापरो वा किमु तन्निमित्त—
मितिप्रणुन्नाः पुनरेव माहुः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(रागादयः बंधनिदानं उक्ताः) रागद्वेष आदि बंध के कारण कहे गये हैं (ते शुद्धचिन्मात्रमहोतिरिक्ताः) वे रागादि शुद्ध चैतन्य रूप तेज से भिन्न हैं (तन्निमितं आत्मा अस्ति) उन रागादिकों का कारण आत्मा है (वा परः किमु) अथवा दूसरा कोई पुद्गल आदि कौन है (इति) इस प्रकार (प्रणुन्नाः) पूछे जाने पर आचार्य (पुनः एव आहुः) फिर ऐसा कहते हैं ॥१२॥

(उपजाति) १७५

न जातु रागादिनिमित्तभाव—
मात्माऽऽत्मनो याति यथार्ककान्तः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव—
वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(आत्मा आत्मनः रागादिनिमित्तभावं) आत्मा अपने रागादिनिमित्त के भाव को (जातु न याति) कभी भी प्राप्त नहीं होता (तस्मिन् परसंग एव) उस आत्मा में पर पदार्थ का संयोग ही (निमित्तंभवति) निमित्त होता है (यथा अर्ककान्तः) जैसे सूर्यकान्त मणि स्वभाव से तो उष्ण नहीं है, किन्तु सूर्य के संबन्ध से अग्निरूप हो जाती है (अयं वस्तु स्वभावः) यह वस्तु का स्वभाव (एव) ही (तावत् उदेति) निश्चय से उदय को प्राप्त होता है ॥१३॥

(अनुष्टुप) १७६

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः
रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः ।१४।

अन्वयार्थ—(इति ज्ञानी स्वं) इस तरह ज्ञानी अपने (वस्तु स्वभावं) वस्तु के स्वभाव को (जानाति) जानता है (तेन सः) इस कारण से वह ज्ञानी (रागादीन् आत्मनः न कुर्यात्) रागादिकों को अपने नहीं करता (अतः कारकः न भवति) इसलिये रागादि का कर्ता नहीं होता है ॥१४॥

(अनुष्टुप) १७७

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनःकुर्यादतो भवति कारकः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(इति स्वं वस्तुस्वभावं अज्ञानी न वेत्ति) ऐसे अपने वस्तु के स्वभाव को अज्ञानी नहीं जानता है (तेन) इस कारण (सः रागादीन् आत्मनः कुर्यात्) वह अज्ञानी रागद्वेषादिकों को अपने करता है (अतः कारकः) इसलिये रागद्वेषादि का कर्ता (भवति) होता है ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडत) १७६

इत्यालोच्य विवेच्यतत्किलपरद्रव्यंसमग्रं वलात्
तन्मूलां वहुभावसंततिमिमामुद्धर्तुकामः समम्
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्
येनोन्मूलितवंध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति

अन्वयार्थ—(इत्यालोच्य तत् समग्रं परद्रव्यं वलात् विवेच्य) ऐसा विचार कर उस सम्पूर्ण पर द्रव्य को बलपूर्वक प्रथक कर (तन्मूलां इमां वहुभावसंततिम्) वह पर द्रव्य ही है मूल कारण जिसका ऐसी इस बहुत भावों की परिपाटी को (समं उद्धर्तुकामः) एक साथ नाश करने की इच्छा करने वाला (किल) निश्चय से (एषः भगवान् आत्मा येन उन्मूलितवंधः) यह भगवान् आत्मा जिस परिणाम से उखाड़ दिया है वंध को जिसने ऐसा होता हुआ (निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्) अतिशय रूप से बहने वाले परिपूर्ण एक चैतन्य से युक्त (आत्मानं समुपैति) आत्मा को प्राप्त करता है (एवः भगवान् आत्मा आत्मनि स्फूर्जति) यह भगवान् आत्मा अपने में स्फुरायमान होता है ॥१७६॥

(मंदाक्रान्ता) १८०

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां ।
कार्यं वंधं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ॥
ज्ञानज्योतिः क्षपिततिमिरं साधुसन्नद्धमेतत् ।
तद्वद्यद्वत्प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥१८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(रागादीनां कारणानां उदयं अदयं) रागादि कारणों के उदय को निर्दयता पूर्वक (दारयत्) नाश करता हुआ (विविधं वंधं कार्यं अधुना सद्यः एव प्रणुद्य) नाना प्रकारके वंध रूप कार्य को इस समय तत्काल ही दूर कर (क्षपिततिमिरं) नाश कर दिया है अज्ञान रूप अंधकार को जिसने (एतत्‌ज्ञानज्योतिः) यह ज्ञान रूपी प्रकाश (तद्वत् साधुसन्नद्धं तत्परःस्यात्) इस तरह से भली भांति तत्पर होता है (यद्वत् अस्य प्रसरं अपरः कोऽपि न आवृणोति) जिस तरह से इसके विस्तार को दूसरा कोई भी नहीं रोक सकता है ॥१७॥

॥ ९ ॥ अथ मोक्षाधिकारः प्रारभ्यते ॥

(शिखरणी) १८०

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बंधपुरुषौ ।
नयन्मोक्षंसाक्षात्पुरुष मुपलंभैकनियतं ॥
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानंदसरस ।
पर पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१॥

अन्वयार्थ—(प्रज्ञाक्रकचदलनात्) प्रज्ञा रूप करोंत के द्वारा विदारण करने से (वंधपुरुषौ) वंध और आत्मा को (द्विधाकृत्य) प्रथक् कर (उपलंभैकनियतं) निज स्वरूप की प्राप्ति रूप से निश्चित (पुरुषं साक्षात् मोक्षं नयत्) आत्मा को साक्षात् रूप से मोक्ष में लेजाता हुआ (सहजपरमानंदसरसं) स्वाभाविक उत्कृष्ट आनंदरूप रस सहित (परं) श्रेष्ठ (पूर्णं) परिपूर्ण (कृतसकलकृत्यं ज्ञानं) समस्त कार्य को कर चुका ज्ञान (इदानीम् उन्मज्जन् विजयते) इस समय प्रगट होता हुआ सर्वोत्कृष्ट रूप से है ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स्रग्धरा) १८१

प्रज्ञाच्छेत्रीशितेयं कथमपिनिपुणैःपातितासावधानैः
सूक्ष्मेऽन्तःसंधिबंधे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानंमग्नमंतः स्थिरविशदलसद्धाम्निचैतन्यपूरे।
वंधंचाज्ञानभावेनियमितमभितः कुर्वतीभिन्नभिन्नौ

अन्वयार्थ—(सावधानैः निपुणैः) सावधान निपुण अर्थात् चतुर पुरुषों से (कथमपि) किसी भी प्रकार से(पातिता) डाली गई (शिता) पैनी (इयं)यह (प्रज्ञा) भेद विज्ञान रूपी (छेत्री) छेनी (रभसात्) वेग से (आत्मकर्मोभयस्य) आत्मा और कर्म दोनों के (सूक्ष्मे अंतः संधिवंधे) सूक्ष्म अंतरंग के जोड़ रूपी वंध में (निपतति) गिरती है (अंतः स्थिरविशदलसद्धाम्नि) अंतरंग में निश्चल और निर्मल शोभायमान है तेज जिसका ऐसे (चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वती) चैतन्य के पूरमें आत्मा को मग्न करती हुई (च) और (वंधं अज्ञान भावे कुर्वती) वंध को अज्ञान भावों में करती हुई (नियमितं अभितः भिन्नभिन्नौ करोति) निश्चय रूप से दोनों को प्रथक प्रथक करती है ॥२॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८२

भित्वासर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते ।
चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमाशुद्धाश्चिदेवास्म्यहं ।
भिद्यन्ते यदिकारकाणि यदिवाधर्मा गुणा वा यदि ।
भिद्यन्तां न भिदाऽस्तिकाचनविभौभावेविशुद्धेचिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(स्वलक्षणबलात् सर्वं) अपने लक्षण के बल से सबको (भित्वाऽपि) भिन्न करके भी (यत) जो (हि) निश्चय से (भेत्तुं) भेद करने में (शक्यते) समर्थ है (चिन्मुद्रांकितनिर्विभाग-महिमा) चैतन्य मुद्रासे चिन्हित निर्विभाग महिमावाला (शुद्धः चित्एव अहं अस्मि) निर्मल चैतन्य रूप ही मैं हूं (यदि कारकाणि) यदि कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण (यदि वा) अथवा (धर्माः) नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व आदि अनेक धर्म (यदि वा) अथवा (गुणाः) ज्ञान दर्शन आदि गुण (भिद्यन्ते) भेद को प्राप्त होते हैं (तर्हि) तो (भिद्यंतां) भेद को प्राप्त हों (विशुद्धे विभौचिति) निर्मल व्यापक चैतन्य रूप (भावे काचन भिदा नास्ति) भाव में कोई भी भेद नहीं है ॥३॥

(मंदाक्रांता) १८३

अद्वैताऽपि हि चेतनाजगतिचेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्ति त्वमेव त्यजेत्
तत्त्यागे जड़ताचितोऽपिभवति व्याप्योविनाव्यापका
दात्माचान्तमुपैति तेननियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तुचित्॥

अन्वयार्थ—(चेत् जगति चेतना) यदि जगत में चेतन (हि) निश्चय से (अद्वैता) अद्वैत है (तर्हि) तो (दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्) दर्शन और ज्ञान रूप को छोड़े (तत्) तो (सामान्यविशेषरूपविरहात्) सामान्य और विशेष रूप का अभाव होने से (अस्तित्वम् एव) अपने अस्तित्व को ही (त्यजेत्) छोड़ देगा (तत्त्यागे चितः अपि जडता भवति) उस चेतनारूप अस्तित्व के छोड़ने पर चैतन्य के भी अचेतनता हो जायगी (व्याप्य आत्मा) व्याप्य आत्मा (व्यापकात् विना अंतं उपैति) व्यापक चैतन्य के विना विनाश को प्राप्त हो जायगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(तेन चित् नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपा:) इस कारण से चैतन्य आत्मा नियम से दर्शन ज्ञान रूप है ॥४॥

(इन्द्रवज्रा) १८४

एकश्चितश्चिन्मयएवभावोभावा: परेयेकिल तेपरेषां
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एवभावोभावा: परेसर्वतएवहेया:

अन्वयार्थ—(चित:) चैतन्य का (एक:) एक (चिन्मय: एव) चैतन्यमय ही (भाव: अस्ति) भाव है (ये) जो (परे भावा: संति) परभाव हैं (ते) वे (किल) निश्चय से (परेषां) परके हैं (तत:) इसलिये (चिन्मय: भाव: एव) चैतन्यमय भाव ही (ग्राह्य:) उपादेय है (परेभावा:) परभाव (सर्वत: हेया: एव सन्ति) सब तरह से त्यागने योग्य ही हैं ॥५॥

(शार्दूलविक्रीडित) १८५

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेवपरमंज्योति:सदैवास्म्यहम् ।
एते येतु समुल्लसन्ति विविधा भावा: प्रथग्लक्षणा:।
तेऽहं नाऽस्मि यतोऽत्र मम परद्रव्यं समग्रा अपि

अन्वयार्थ—(उदात्तचित्तचरितै: मोक्षार्थिभि:) निर्मल है मनो व्यापार जिन्होंका ऐसे मोक्ष को चाहने वाले (अयं सिद्धान्त: सेव्यतां) इस सिद्धान्त का सेवन करें (अहं शुद्धं एकं चिन्मयं परमं ज्योति:) मैं शुद्ध एक चैतन्य श्रेष्ठ ज्योति रूप (एव) ही (सदैव अस्मि) हमेशा से हूं (तु) और (ये एते प्रथग्लक्षणा: विविधा भावा:) जो ये भिन्न भिन्न लक्षण वाले नाना प्रकार के भाव (समुल्लसन्ति) हो रहे हैं (ते अहं नाऽस्मि) वे मैं नहीं हूं (यत: ते समग्रा परद्रव्यं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्र मम न) क्योंकि वे समस्त भाव परद्रव्य हैं ये मेरे नहीं हैं ॥६॥

(अनुष्टुप) १८६

परद्रव्यग्रहं कुर्वन्, बध्यतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न, स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥७॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यग्रहं कुवन अपराधवान्) परद्रव्य को ग्रहण करता हुआ अपराधी (एव बध्यते) ही बंध को प्राप्त होता है (स्वद्रव्ये संवृतः मुनिः अनपराधः न बध्येत) अपनी द्रव्य में लीन मुनि अपराध रहित है इसलिये बंध को प्राप्त नहीं होता ॥७॥

(मालिनी) १८७

अनवरतमनन्तै बध्यते सापराधः ।
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु ॥
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो ।
भवति निरपराधः साधुशुद्धात्मसेवी ॥८॥

अन्वयार्थ—(सापराधः अनवरतं अनंतैः) अपराधी निरंतर अनंत कर्मरूप पुद्गलों से (बध्यते) बंधता है (निरापराधः जातु बंधनं न) अपराध रहित कभी भी बंध को नहीं (स्पृशनि) स्पर्श करता (अयं) यह (अशुद्धं स्वं भजन्) अशुद्ध अपने को भजता हुआ (नियतं सापराधः एव भवति) नियम से अपराधी होता ही है (शुद्धात्मसेवी साधुः निरपराधः भवति) शुद्ध आत्मा की सेवा करने वाला साधु निरपराधी होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां ।
प्रलीनं चापलमुन्मीलितमालम्बनं ॥
आत्मन्येवालानितं चचित्तमा—
सम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥६॥

अन्वयार्थ—(अतः सुखासीनतां गताः) इसलिये सुख के आलम्बन को प्राप्त हुए (प्रमादिनः हताः) प्रमादी ताडित हुए (आसम्पूर्ण विज्ञान घनोपलब्धेः) परिपूर्ण विज्ञान घन की प्राप्ति से (चापलं प्रलीनं) चंचलता नष्ट हुई (आलम्बनं उन्मीलितं चित्तं) आत्मावलम्बन प्रगट हुआ मन (आत्मनि एव आलानितं) आत्मा में ही संबंध को प्राप्त हुआ ॥६॥

(वसंततिलका) १८६

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम् ,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किंनोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निःप्रमादः ॥१०

अन्वयार्थ—(यत्र प्रतिक्रमणं विषं प्रणीतं एव) जहां प्रतिक्रमण विषरूप ही (स्यात्) हो (तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा एव कुतः स्यात्) वहां प्रतिक्रमण का अभाव अमृतमय हो ही कैसे सकता है (तत्) इसलिए (अधः अधः प्रपतन् जनः किं प्रमाद्यति) नीचे नीचे गिरता हुआ पुरुष क्यों प्रमाद करता है (निःप्रमादः) प्रमाद रहित (सन्) होता हुआ (ऊर्ध्वं ऊर्ध्वं) ऊपर ऊपर (किं न अधिरोहति) क्यों नहीं चढ़ता है ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पृथ्वी) १६०

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः ।
कषायभरगौरवादलसतः प्रमादो यतः ॥
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन् ।
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाचिरात् ।११

अन्वयार्थ—(यतः कषायभरगौरवात्) जिस कारण से कषाय के भार से वजनदार (अलसतः प्रमादः भवति) आलस्य से प्रमाद होता है (प्रमादकलितः अलसः) प्रमाद से सहित आलस भाव से (शुद्धभावः कथं स्यात्) शुद्ध भाव कैसे हो सकता है (अतः स्वरसनिर्भरे) इसलिये आत्मिक रस के भार से भरपूर (स्वभावे नियमितः भवन्) स्वभाव में निश्चल होता हुआ (मुनिः परमशुद्धतां व्रजति) मुनि परम शुद्धता को प्राप्त होता है (च अचिरात् मुच्यते) और शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥११॥

(शार्दूलविक्रीडित) १६१

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किलपरद्रव्यंसमग्रंस्वयं
स्वद्रव्येरतिमेति यः सनियतं सर्वापराधच्युतः ॥
वन्धध्वंसमुपेत्यनित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धोभवन्मुच्यते १२

अन्वयार्थ—(तत्) इस कारण (यः अशुद्धिविधायि) जो अशुद्धि को करने वाले (समग्रं परद्रव्यं स्वयं) समस्त परद्रव्य को स्वयमेव (त्यक्त्वा) छोड़कर (किल) निश्चय से (स्वद्रव्ये रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एति) अपने आत्म द्रव्य में रति को प्राप्त करता है (सः नियतं सर्वा-पराधच्युतः) वह नियम से सम्पूर्ण अपराधों से रहित (बन्धध्वंसं उपेत्य) बंध के विनाश को प्राप्त कर (नित्यं उदितः) निरंतर उदयशील (स्वज्योतिरच्छोच्छलच्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा) अपने प्रकाशमान निर्मल उच्छलते हुए चैतन्य रूपी अमृत के प्रवाह से पूर्ण महिमा-वान (शुद्धः भवन्मुच्यते) शुद्ध होता हुआ मुक्त हो जाता है ॥१२॥

(मंदाक्रांता) १६२

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत—
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकांतशुद्धं ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगंभीरधीरं ।
पूर्णज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ।

अन्वयार्थ-(बन्धच्छेदात् अक्षय्यं अतुलंमोक्षंकलयत्) बंधके विनाश से अविनाशी अनुपम मोक्ष को संपादन करता हुआ (नित्योद्योतस्फुटित सहजावस्थं) निरंतर प्रकाश रूप प्रगट हो गई है स्वाभाविक अवस्था जिसकी ऐसे (एकान्तशुद्धं) एकान्त रूप से शुद्ध (एकाकारस्वरस भरतः) एक आकार रूप अपने रस के भार से (अत्यंतगंभीरधीरं उज्वलितं) अतिशय गंभीर धीर और दैदीप्यमान (एतद् पूर्णज्ञान स्वस्य अचले) यह पूर्णज्ञान अपनी आत्मा के निश्चल (महिम्नि लीनं भवति) तेज में लीन हो जाता है ॥१३॥

॥१०॥ अथ सर्वविशुद्धि-अधिकारः प्रारभ्यते ॥

(मंदाक्रांता) १६३

नीत्वा सम्यक्प्रलयमखिलान्कर्तृभोक्तादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तैः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि—
टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥१॥

अन्वयार्थ—(अखिलान्कर्तृभोक्त्रादिभावान्) समस्त कर्ता भोक्ता आदि भावों को (सम्यक् प्रलयं नीत्वा) भली भाँति से विनाश करके (बन्धमोक्षप्रक्लृप्तैः) बंध मोक्ष की कल्पनाओं से (प्रतिपदं दूरी भूतः) पद पद पर प्रथक हुआ (शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्ण-पुण्याचलार्चि) अत्यन्त शुद्ध ज्ञान रूप रस के प्रसार से परिपूर्ण रूप से पवित्र और निश्चल (टंकोत्कीर्णप्रकटमहिमा) टंकोत्कीर्ण रूप से प्रगट हो गई है महिमा जिसकी ऐसा (अयं ज्ञानपुंजः स्फूर्जति) यह ज्ञान पुंज आत्मा स्फुरायमान हो रहा है ॥१॥

(अनुष्टुप) १६४

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्यचितो वेदयितृत्ववत ।
अज्ञानादेव कर्त्ताऽयं तदभावादकारकः ॥२॥

अन्वयार्थ—(अस्य चितः) इस चैतन्य का (वेदयितृत्ववत् कर्तृत्वं स्वभावः न) भोक्तापन के समान कर्तापन स्वभाव नहीं है (अयं अज्ञानात् एव कर्ताऽस्ति) यह अज्ञान से ही कर्ता है (तत् अभावात् अकारकः) उस अज्ञान के अभाव से कर्ता नहीं है ॥२॥

(शिखरणी) १६५

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल वंधः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः।३।

अन्वयार्थ—(इति अयं जीवः खलु अकर्ता स्थितः) इस प्रकार यह जीव निश्चय से अकर्ता सिद्ध हुआ (स्वरसतः विशुद्धः) अपने चैतन्य रस से विशुद्ध है (स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः) स्फुरायमान चैतन्य रूप प्रकाश से व्याप्त कर दिया है लोक के मध्य भाग को जिसने (तथापि अस्य इह असौ) तो भी इस आत्मा के इस लोक में यह (यत् प्रकृतिभिः वंधः स्यात) जिस कारण प्रकृति आदि से वंध होता है (किल) निश्चय से (सः अज्ञानस्य कोऽपि गहनः महिमा स्फुरति) वह अज्ञान की कोई भी गहरी महिमा स्फुरायमान है ॥३॥

(अनुष्टुप) १९६

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतःकर्तृत्ववच्चितः
अज्ञानादेवभोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥४॥

अन्वयार्थ—(अस्य चितः कर्तृत्ववत् भोक्तृत्वं स्वभावः न) इस चैतन्य का कर्तापन के समान भोक्तापन स्वभाव नहीं है (स्मृतः अयं अज्ञानात् एव भोक्ता तदभावात् अवेदकः) स्मरण किया गया है कि यह आत्मा अज्ञान से ही भोक्ता है, उस अज्ञान के अभाव से भोक्त नहीं है ॥४॥

(शार्दूलविक्रीडित) १९७

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता

अन्वयार्थ—(अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतः) अज्ञानी ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के स्वभाव में लगा हुआ है इसलिये (नित्यं वेदकः भवेत्) निरंतर भोक्ता है (ज्ञानी तु) ज्ञानी तो (प्रकृतिस्वभावविरतः) ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के स्वभाव से अलग है इसलिये ये (जातुचित् वेदकः न) कभी भी भोक्ता नहीं है (इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां) इस प्रकार के नियम को निरूपण करके निपुण पुरुष अज्ञानियों को छोड़ें (शुद्धैकात्ममये महसि अचलितैः ज्ञानिता आसेव्यतां) शुद्ध एक आत्म रूप तेज में निश्चल पुरुष ज्ञानी पने को भलीभाँति सेवन करें ॥५॥

(वसंततिलका) १६८

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म—
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं ।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा—
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी कर्म न करोति) ज्ञानी कर्म को नहीं करता (न च वेदयते) और न भोगता है (अयं) यह जीव (केवलं जानाति) सिर्फ कर्म को जानता है (किल) निश्चय से (तत्स्वभावं जानन्) उस स्वभाव को जानता हुआ (करणवेदनयोः अभावात्) करने और भोगने के अभाव से (परं शुद्धस्वभावनियतः) श्रेष्ठ शुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव में निश्चित (हि) निश्चय से (स मुक्त एव) वह आत्मा मुक्त ही है ॥६॥

(अनुष्टुप) १६६

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम् ॥७

अन्वयार्थ—(तु ये) और जो (तमसा) अज्ञान अंधकार से (तताः) व्याप्त हैं (ते) वे ही (आत्मानं कर्तारम् पश्यन्ति) आत्मा को कर्ता मानते हैं (सामान्यजनवत्) साधारण मनुष्यों के समान (तेषां मुमुक्षुतां) उन मुमुक्षुओं को (अपि मोक्षः न) भी मोक्ष नहीं हो सकता ॥७॥

(अनुष्टुप) २००

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यात्मतत्त्वयोः) परद्रव्य और आत्म द्रव्य में (सर्वः अपि सम्बन्धः) कोई भी संबंध (नास्ति) नहीं है (कर्तृकर्मत्वसंबंधाभावे) कर्ता और कर्म रूप संबंध के अभाव में (तत्कर्तृता कुतः स्यात्) वह कर्म का कर्तापन कैसे हो सकता है ॥ ८ ॥

(वसंततिलका) २०१

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेणसार्द्धं—
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्कर्तृकर्मघटनाऽस्ति न वस्तुभेदे—
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाः स्वतत्त्वं ॥९॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (एकस्य वस्तुनः) किसी एक वस्तु का (अन्यतरेण सार्द्धं) दूसरी वस्तु के साथ (यतः सकलः अपि) जिस कारण से सभी (संबंधः निषिद्धः एव) संबंध निषिद्ध ही है (तत्) इस कारण (वस्तुभेदेकर्तृकर्मघटना) वस्तु के भेद में कर्ता और कर्म का व्यवहार (नास्ति) नहीं बन सकता इसलिये (मुनयः जनाश्च) मुनिजन और साधारण जनता (स्वतत्व) निज स्वरूप को (अकर्तृ) कर्ता रहित (पश्यन्तु) देखें ॥९॥

वसंततिलका २०२

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेय—
मज्ञानमग्नमहसो वत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म—
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ।१०।

अन्वयार्थ—(येतु) और जो (इयम् स्वभावनियमं न कलयन्ति) इस स्वभाव के नियम को नहीं जानते हैं (वत) खेद है कि (अज्ञानमग्नमहसः) अज्ञान में लीन है तेज जिन्हों का ऐसे (ते वराकाः कर्म कुर्वन्ति) वे विचारे कर्म को करते हैं (ततएव) इसलिये ही (चेतनः) आत्मा (हि) निश्चय से (भावकर्मकर्ता स्वयं एव भवति) भाव कर्मों का कर्ता स्वयं ही होता है (अन्यः न) दूसरा नहीं ॥ १० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूल विक्रीडित) २०३

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाःप्रकृतेःस्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्कृतिः
नैकस्याःप्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः

अन्वयार्थ—(कार्यत्वात्) कार्य होने से (कर्म) कर्म (अकृतं) विना किया (न) नहीं हो सकता (च) और (तत् जीवप्रकृत्योः) वह कर्म जीव और प्रकृति (द्वयोः) दोनों का किया हुआ (न भवेत्) नहीं हो सकता, यदि प्रकृति का किया माना जावे तो (अज्ञायाः प्रकृतेः-स्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात्) अचेतन प्रकृति के अपने कार्य के फल को भोगने का प्रसंग हो जाएगा (एकस्याः प्रकृतेः) एक प्रकृति के (अचित्वलसनात्) अचेतन होने से (कृतिः न) कर्मरूप कार्य नहीं हो सकता (ततः अस्य कर्ता) इस कारण इस कर्म का कर्ता (जीवः) जीव है (तत्कर्म) यह कर्म (जीवस्य एव) जीव का ही है क्योंकि (चिदनुगं) कर्म चेतन के साथ अन्वयरूप है (यत्) जिस कारण से (पुद्गलः) पुद्गल (ज्ञाता न) जानने वाला नहीं है इसलिए भाव कर्म नहीं है ॥ ११ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १०४

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वात्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैषकथंचिदित्यचलिताकैश्चित्श्रुतिःकोपिता
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां वोधस्य संशुद्धये ।
स्याद्वादप्रतिवंधलब्धविजयावस्तुस्थितिस्तूयते १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(आत्मनः) आत्मा के (हतकैः) घातक (कर्मण्व) कर्म को ही (कर्तृ) कर्ता (प्रवितर्क्य) मानकर (कर्तृतां) आत्मा के कर्तापन को (क्षिप्त्वा) दूरकर (एषःआत्मा) यह आत्मा (कथं--चित्) कथंचित् (कर्ता) कर्ता है (इति) ऐसी (अचलिता) निश्चल श्रुतिः) जिनवाणी को (कैश्चित्) किन्हीं ने (कोपिता) क्रुद्ध करदिया (तेषां) उन (उद्धतमोहमुद्रितधियां) महान मोह से मंद बुद्धि वालों के (वोधस्य) वोध को (संशुद्धये) अच्छी तरह शुद्ध करने के लिये (स्याद्वादप्रतिवंधलब्धविजया) स्याद्वाद के प्रति वंध से विजय को प्राप्त ऐसी (वस्तुस्थितिः स्तूयते) वस्तु की मर्यादा कही जाती है ॥१२

(शार्दूलविक्रीडित) २०५

मा कर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदाववोधादधः
उर्द्धंतूद्धतवोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं ।
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम्॥१३

अन्वयार्थ—(अमी आर्हताः) वे जैन लोग (सांख्या इव) सांख्य मतवादियों के समान (पुरुषं कर्तारं) आत्माको कर्ता (मास्पृशन्तु) मत मानें (भेदाववोधात) भेद ज्ञान के (अधः) पहले (तं) उस आत्मा को (सदा) हमेशा (किल) निश्चय से (कर्तारं कलयन्तु) कर्ता मानें (उर्द्धन्तु) भेद विज्ञान के पश्चात तो (उद्धतवोधधामनि-यतं) उत्कृष्ट ज्ञान रूप मंदिर में निश्चित (एनं) इस आत्मा को (च्युत-कर्तृभावं) कर्ता पने से रहित (अचलं) निश्चल (एकं) अद्वितीय (परं) श्रेष्ठ (ज्ञातारं) ज्ञाता (स्वयं) स्वयमेव (प्रत्यक्षं पश्यन्तु) प्रत्यक्षरूप से देखें ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मालिनी) २०६

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं ।
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ॥
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः ।
स्वयमयमभिषिंचंश्चिच्चमत्कार एव ॥१४॥

अन्वयार्थ—(एकः) कोई एक बौद्ध (इह) इस लोक में (इदं-आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा) इस आत्म तत्त्व को क्षणिक कल्पना करके (कर्तृभोक्त्रोः विभेदं) कर्ता और भोक्ता के भेद को (निजमनसिविधत्ते) अपने मनमें धारण करता है (तस्य नित्यामृतौघैः) उसके नित्यरूप अमृत समुदाय से (अभिषिंचन्) सींचता हुआ (विमोहं) अज्ञानरूप (अयं) यह (चिच्चमत्कारः) चैतन्य का चमत्कार (स्वयमेव) स्वयमेव (अपहरति) दूर करता है ॥ १४ ॥

(अनुष्टुप) २०७

वृत्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्यःकरोतिभुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥

अन्वयार्थ—(वृत्यांशभेदतः) प्रति क्षणवर्ती अवस्था के प्रथक २ भेद से (अत्यन्तं) अत्यन्त रूप से (वृत्तिमन्नाशकल्पनात्) वृत्तिमान पदार्थ की कल्पना से (अन्यः करोति) दूसरा कर्ता है (अन्यः-भुंक्ते) दूसरा कोई भोक्ता है (इति एकान्तः मा चकास्तु) ऐसा एकान्तवाद न हो ॥ १५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडित) २०८

आत्मानंपरिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिवलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्ज्जुसूत्रे रतैः
आत्माव्युज्झितएषहारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः

अन्वयार्थ—(आत्मानं परिशुद्धं ईप्सुभिः) आत्मा को विशुद्ध चाहने वाले (पृथुकैः) बौद्ध (कालोपाधिवलात्) काल रूप उपाधि के बल से (अतिव्याप्तिं) अतिव्याप्ति को (प्रपद्य)प्राप्तकर (तत्रापि) उसमें भी (अधिकां) अधिक (अशुद्धिम्) अशुद्धिको (मत्वा) मानकर (परैः चैतन्यं) दूसरे आत्मा को (क्षणिकं प्रकल्प्य) क्षणिक रूप कल्पना कर (शुद्धर्ज्जु सूत्रेरतैः) शुद्धरिजुसूत्रनय से प्रेरित हुए (अन्धकैः) अन्धों ने (निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः) सूत्ररहित मोतियों को देखने वाले (हारवत्) हार के समान (एषः) इस (आत्मानं-व्युज्झितः अहो) आत्मा को छोड़ दिया यह खेद है ॥ १६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २०६

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेवसंचिन्त्यतां
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचित्
तच्चिंतामणिमालिकेयमभितोप्येका चकास्त्वेव नः

अन्वयार्थ—(कर्तुः) कर्ता के (च) और (वेदयितुः) भोक्ता के (युक्तिवशतः) युक्ति के वश से (भेदः) भेद (वा) अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अभेदः अपि) अभेद भी (अस्तु) हो (कर्ता) कर्ता (च) और (वेदयिता) भोक्ता (भवतु) हो (वा मा भवतु) अथवा नहीं हो (निपुणैः वस्तु एव) निपुण पुरुष वस्तु ही (संचिन्त्यतां) विचारें (सूत्रे) सूत्र में (प्रोता) पोई गई मणियों की माला के (इव) समान (एषः) इस (आत्मनि) आत्मा में संबद्ध (इयं) यह (चिन्तामणिमालिका) चैतन्यरूप चिन्तामणि की माला (क्वचित् अपि) कहीं पर भी (भेत्तुं) भेद करने में (शक्या न) समर्थ नहीं है यह (नः) हमारे (अभितः) चारों तरफ से (एका) एक रूप से ही (चकास्तु) प्रकाशमान रहे ॥ १७ ॥

(रथोद्धता) २१०

व्यावहारिकदृशैव केवलं—
कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तुचिन्त्यते—
कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥१८॥

अन्वयार्थ—(व्यवहारिकदृशा) व्यवहार की दृष्टि में (एव) ही (केवलं) सिर्फ (कर्तृ च) कर्ता और (कर्म) कर्म (विभिन्न) बिल्कुल भिन्न (इष्यते) मालूम होता है (यदि) यदि (निश्चयेन) निश्चयनय से (वस्तु) वस्तु का (चिन्त्यते) विचार किया जाय (तर्हि) तो (कर्तृ) कर्ता (च) और (कर्म) कर्म (सदा) हमेशा (एकं इष्यते) एक ही मालूम होंगे ॥ १८ ॥

(नर्दटक) २११

ननु परिणामी एव किल कर्मविनिश्चयतः ।
स भवति नापरस्य परिणामिन एव न भवेत् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया।
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृत्वादेव ततः।१८

अन्वयार्थ—(कर्मविनिश्चयतः) कर्म के विशेष निश्चय से (एव) ही (सः परिणामी) वह पदार्थ परिणाम वाला (भवति) होता है (ननु अपरस्य) यह निश्चय ही है कि दूसरे (परिणामिनः) परिणाम वाले को (सः) वह परिणाम (न भवेत्) नहीं हो सकता (इह कर्म कर्तृ शून्यं न भवति) इस लोक में कर्म कर्ता के विना नहीं होता (इह) यहां (एकतया) एकान्त रूप से (स्थिति) वस्तु की मर्यादा (न भवति) नहीं होती (ततः वस्तुनः) इसलिये वस्तु के (कर्तृ-त्वात्) कर्ता होने से (तद्भवतु) वह कर्म भी होना चाहिये ॥ १८ ॥

(पृथ्वी) २१२

वहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं।
तथाप्यपरवस्तुनोविशति नान्यवस्त्वन्तरं॥
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते।
स्वभावचलनाकुलः किमिहमोहितःक्लिश्यते।१६।

अन्वयार्थ—(यद्यपि) यद्यपि वस्तु (स्वयं स्फुटदनन्तशक्तिः) खुद प्रगट अनन्त शक्तिवान है (तथापि अन्यवस्तु) तो भी अन्य वस्तु (अपरवस्तुनः) दूसरी वस्तु के (अंतरं न विशति) मध्य में प्रवेश नहीं करती (वहिर्लुठति) किन्तु वाहर ही रहा करती है (यतःसकलं-एव) क्योंकि समस्त ही (वस्तु) वस्तु (स्वभावनियतं) स्वभाव में निश्चित (इष्यते) मानी गई है (इह मोहितः) यहां मोह को प्राप्त हुआ (स्वभावचलनाकुलः) स्वभाव की चंचलता से आकुल होता हुआ (किं क्लिश्यते) क्यों दुखी होता है ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(रथोद्धता) २१३

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो —
येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः—
किं करोतिहि वहिर्लुठन्नपि ॥२०॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक में (येन एकं) जिस कारण से एक वस्तु (अन्य वस्तु नः) दूसरी वस्तु नहीं है (तेन) इस कारण से (तत् वस्तु) वह वस्तु (खलु) निश्चय से (वस्तु) वस्तु है (अयं निश्चयः) यह निश्चय है (अपरः) दूसरा (कः) कौन (वहिर्लुठन्नपि) बाहिर लौटता हुआ भी (अपरस्य) दूसरे का (हि) निश्चय से (किंकरोति) क्या करता है अर्थात् कुछ भी नहीं करता ॥२०॥

(रथोद्धता) २१४

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः—
किंचनापि परिणामिनः स्वयं ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं—
नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(यत्त) जो (वस्तु स्वयं) वस्तु खुद (परिणामिनः) परिणमनशील (अन्यवस्तुनः) दूसरी वस्तु का (किंचनापि कुरुते) कुछ भी करती है (तत्) वह (व्यवहारिकदृशा एव) व्यवहार की दृष्टि से ही (मतं) माना गया है (निश्चयात् तु) निश्चय से तो (इह) इस लोक में (अन्यत् किमपि नास्ति) दूसरा कुछ भी नहीं है ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडित) २१५

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वंसमुत्पश्यतो ।
नैकद्रव्यगतंगतं चकास्तिकिमपि द्रव्यांतरं जातुचित्
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः ।
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवंते जनाः

अन्वयार्थ—(शुद्धं द्रव्यनिरूपणार्पितमतेः) शुद्ध द्रव्य के निरूपण में लगा दिया है बुद्धि को जिसने और (तत्त्वं) तत्त्व अर्थात् वस्तु स्वरूप को (समुत्यश्पतः) भली भांति देखने वाले के (एकद्रव्यगतं) एक द्रव्य में प्राप्त (किमपि) कोई भी (द्रव्यान्तरं) दूसरा द्रव्य (जातुचित् न चकास्ति) कभी भी शोभा नहीं पाता (यत्तु) और जो (ज्ञानं) ज्ञान (ज्ञेयं)ज्ञेय—पदार्थ को (अवैति) जानता है (तत्) वह (अयं) यह (शुद्धस्वभावोदयः) शुद्ध द्रव्य के स्वभाव का उदय है इसलिए (द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः) दूसरे द्रव्य के ग्रहण करने से आकुल बुद्धि वाले (जनाः) लोग (तत्वात्) वस्तु रूप से (किं च्यवन्ते) क्यों दूर होते हैं ॥२२॥

(मंदाक्रान्ता) २१६

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात् किं स्वभावस्य शेष—
मन्यद्रव्यं भवति यदि वा तस्यकिंस्यात्स्वभावः॥
ज्योत्स्नारूपंस्नपयतिभुवं नैव तस्यास्तिभूमि—
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयतिसदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ —(शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्) शुद्ध द्रव्य के निजरस रूप होने से (शेषं) बाकी (अन्यद्रव्यं) दूसरा द्रव्य (स्वभावस्य किं भवति)दूसरे के स्वभाव का क्या कर सकता है अर्थात् कुछ भी नहीं(यदि वा) अथवा (तस्य स्वभावः किं स्यात्) उस अन्य द्रव्य का स्वभाव क्या हो सकता है अर्थाद् कुछ भी नहीं (ज्योत्स्नरूपं भुवं स्नपयति) चांदनी का रूप पृथ्वी को स्वच्छ करता है (तस्य) उस चांदनी का रूप (भूमिः नैवास्ति) पृथ्वी रूप नहीं होता (ज्ञानं) ज्ञान (ज्ञेयं) ज्ञेय अर्थात् पदार्थ को (सदा कलयति) हमेशा जानता है (अस्य) इस ज्ञान के (ज्ञेयं) ज्ञेय पदार्थ (नैवास्ति) नहीं होता ॥२३॥

(मंदाक्रान्ता) २१७

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यं ॥
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं ।
भावाभावौ भवति तिरयन्येनपूर्वस्वभावः॥२४॥

अन्ववार्थ —(रागद्वेषद्वयं) राग और द्वेष ये दोनों (तावत् उदयते) तभी तक उदीयमान रहते हैं (यावत् ज्ञानंज्ञानं न भवति) जब तक ज्ञान ज्ञानरूप नही होता (पुनः बोध्यं बोध्यतां न याति) और ज्ञेय अर्थात् पदार्थ ज्ञेयता को प्राप्त नहीं होता (न्यक्कृताज्ञान भावं) इसलिये दूर कर दिया है अज्ञान भाव को जिसने ऐसा (इदं ज्ञानं ज्ञानं भवतु) यह ज्ञान ज्ञान रूप हो (येन भावाभावौ तिरयत् पूर्वस्वभावः भवति) जिससे भाव और अभाव इन दोनों को दूर करता हुआ पूर्ण स्वभाव रूप हो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(मंदाक्रान्ता) २१८

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावा
त्तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशादृश्यमानौ न किंचित् ॥
सम्यग्दृष्टिःक्षपयतु ततस्तत्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्च्चिः ॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से (इह) इस आत्मा में (ज्ञानं अज्ञानभावात्) ज्ञान, अज्ञान भाव से (रागद्वेषौ भवति) राग और द्वेष रूप हो जाता है (प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ) सावधान दृष्टि से देखने वाले (तौ किंचित् वस्तुत्वं न) वे राग और द्वेष कुछ भी वस्तुरूप नहीं हैं (तत् सम्यग्दृष्टिः तत्त्वदृष्ट्या) इसलिये सम्यग्दृष्टि तत्त्व दृष्टि से (स्फुटन्तौ) प्रतिभासमान राग और द्वेष को (क्षपयतु) दूर करें (येन सहजं पूर्णाचलार्च्चिः) जिससे स्वाभाविक परिपूर्ण निश्चल प्रकाशवान (ज्ञानज्योतिर्ज्वलति) ज्ञान रूपी ज्योति प्रकाशमान रहे ॥ २५ ॥

(शालिनी) २१९

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या —
नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति—
व्यक्ताऽत्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।२६।

अन्वयार्थ—(तत्त्वदृष्ट्या) यथार्थ दृष्टि से (रागद्वेषोत्पादकं) राग और द्वेष को उत्पन्न करने वाली (अन्यत् किंचन अपि) दूसरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई भी (द्रव्यं न वीक्ष्यते) द्रव्य देखने में नहीं आता है (यस्मात्) जिस कारण (सर्वद्रव्योत्पत्तिः) सब द्रव्यों की उत्पत्ति (स्वस्वभावेन) अपने स्वभाव से (अन्तः) अंतरंग में (व्यक्ताः) स्पष्ट होती हुई (अत्यंतं चकास्ति) अतिशय रूप से शोभित होती है ॥२६॥

(मालिनी) २२०

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः ।
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ॥
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो ।
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ।२७।

अन्वयार्थ—(इह यत् रागद्वेषदोषप्रसूतिः) इस आत्मा में जो राग और द्वेष रूप दोष की उत्पत्ति (भवति) होती है (तत्र परेषां कतरदपि दूषणं नास्ति) उसमें परद्रव्यों का कुछ भी दोष नहीं है (अयं अबोधः) यह अज्ञान (तत्र स्वयं अपराधी सर्पति) उस दोष में खुद ही अपराधी रुप से फैल रहा है यह बात(विदितं भवतु) विदित हो (अबोधः अस्तं यातु) अज्ञान विनाश को प्राप्त हो क्योंकि मैं (बोधः अस्मि) ज्ञान रूप हूं ॥२७॥

(रथोद्धता) २२१

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेवकलयंतियेतुते
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः

अन्वार्य—(ये रागजन्मनि) जो राग की उत्पत्ति में (परद्रव्यं एव निमित्ततां कलयन्ति) परद्रव्य को ही निमित्त रूप से मानते हैं वे तो (शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः) निर्मल ज्ञान से शून्य अंध बुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले इस (मोहग्राहिनीं) मोह रूपी नदी को (हि) निश्चय से (न उत्तरन्ति) पार नहीं हो सकते ॥२८॥

(शार्दूलविक्रीडित) २२२

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोद्धा न बोध्यादयं
यायात्कामपिविक्रियां तत इतो दीपःप्रकाश्यादिव
तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमयी भवन्ति सहजां मुंचन्त्युदासीनताम् ॥

अन्वयार्थ—(अयं पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा) यह पूर्ण एक अविनाशी निर्मल ज्ञान रूप महिमा वाला (बोध्यबोध्यात्) ज्ञान जानने योग्य पदार्थ से (कामपिविक्रियां न यायात्) किसी भी विकार को नहीं प्राप्त हो सकता (इतः प्रकाश्यात् दीपः इव) इस प्रकार प्रकाश करने योग्य पदार्थ से दीपक के समान अर्थात् जैसे घट पटादि पदार्थों से प्रकाश करने वाला दीपक पैदा नहीं होता वैसे ही ज्ञेय से ज्ञान पैदा नहीं होता (ततः) इसलिये (तद्वस्तुस्थितिबोधवन्ध्यधिषणाः) उस रूप वस्तु की स्थिति के ज्ञान से शून्य बुद्धि वाले (एते अज्ञानिनः) ये अज्ञानी लोग (किं रागद्वेषमयी भवति) क्यों राग द्वेषमय हो रहे हैं और (सहजां उदासीनतां) स्वाभाविक उदासीनता को (किं मुंचन्ति) क्यों छोड़ रहे हैं ॥२६॥

(शार्दूलविक्रीडित) २२३

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकलाभिन्नास्तदात्वोदयात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चंचच्चिदर्चिष्मयीं
विंदन्ति स्वरसाभषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनां

अन्वयार्थ—(रागद्वेषविभावमुक्तमहसः) रागद्वेष रूप विभाव से शून्य तेज वाले (नित्यं स्वभावस्पृशः) निरंतर स्वभाव को ही स्पर्श करने वाले (पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला) भूत भविष्यत के समस्त कर्मों से शून्य और (तदात्वोदयात्) वर्तमान के कर्मोदय से (भिन्नाः) प्रथक (दूरारूढचरित्रवैभवबलात्) अतिशय रूप से धारण किये गये चारित्र रूप ऐश्वर्य के बल से (चंचच्चिदर्चिष्मयीं) चमकीली चैतन्य रूपी ज्वालाओं वाली (स्वरसाभषिक्तभुवनां) अपने रस से सींच दिया है लोक को जिसने ऐसी (ज्ञानस्य संचेतनांविंदति) ज्ञान की समीचीन चेतना को प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

(उपजाति) २२४

ज्ञानस्य संचेतनयैवनित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्धं
अज्ञानसंचेतनयातुधावन्बोधस्यशुद्धिंनिरुणद्धिबंधः

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्य संचेतनया) ज्ञान की सम्यक् चेतना से (एव) ही (ज्ञानं अतीवशुद्धं) ज्ञान अतिशय रूप से शुद्ध (नित्यं प्रकाशते) निरंतर प्रकाशित होता है (अज्ञानसंचेतनयातु) अज्ञान चेतना से तो (धावन्) दौड़ता हुआ (बंधः) बंध (बोधस्य) ज्ञान की (शुद्धि निरुणद्धि) शुद्धि को रोक देता है ॥३१॥

(आर्या) २२५

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयंमनोवचनकायैः
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(त्रिकालविषयं) तीन काल सम्बन्धी (सर्वं कर्म) सभी कर्मों को (मनोवचनकायैः) मन वचन काय और (कृत करितानुमनुनैः) कृत कारित अनुमोदना से (परिहृत्य) दूर कर मैं (परमं) अतिश्रेष्ठ (नैष्कर्म्यं) कर्म शून्यता का (अवलम्बे) आलम्बन करता हूँ ॥३२॥

(आर्या) २२६

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणिनित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ—(मोहात्) मोह से अर्थात् अज्ञान से (अहं) मैंने (यत्कर्म) जो कर्म (अकार्षन्) किये (तत्समस्तं अपि) उन सम्पूर्ण कर्मों का (प्रतिक्रम्य) प्रतिक्रमण कर (निष्कर्मणि) कर्मों से शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य रूप (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (नित्यं) निरन्तर (वर्ते) प्रवृत्ति करता हूँ ॥ ३३ ॥

(आर्या) २२७

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्मसकलमालोच्य
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणिनित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ—(मोहविलासविजृम्भितम्) मोह के विलास से वृद्धि को प्राप्त हुए (उदयत्) उदय में आ रहे (इदं सकलं कर्म आलोच्य) इन सम्पूर्ण कर्मों की आलोचना कर (निष्कर्मणि) कर्मों से शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य स्वरूप (आत्मनि) आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (नित्यं वर्ते) निरन्तर प्रवृत्ति करता हूँ ॥ ३४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(आर्या) २२८

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणिनित्यमात्मनावर्ते

अन्वयार्थ -(भविष्यत्) आगामी (समस्तं कर्म) सम्पूर्ण कर्म को (प्रत्याख्याय) छोड़कर (निरस्तसंमोहः) मोह से रहित (निष्कर्मणि चैतन्यात्मनि) कर्मों से शून्य चैतन्य स्वरूप (आत्म.न) आत्मा में (आत्मना नित्यं वर्ते) अपने द्वारा निरन्तर प्रवृत्ति करता हूँ ॥३५॥

(उपजाति) २२९

समस्तमित्येवमपास्यकर्म—
त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्वी ।
विलीनमोहो रहितं विकारै—
श्चिन्मात्रमात्मानमयाऽवलम्बे ॥३६॥

अन्वयार्थ—(इत्येवं) इस प्रकार (समस्तं त्रैकालिकं कर्म अपास्य) सम्पूर्ण तीन काल संबंधी कर्मों को छोड़कर (शुद्ध नयावलम्वी) शुद्ध नय का अवलम्वन करने वाला (विलीनमोहः विकारैः) मोह से शून्य कर्म कृत विकार भावों से (रहितं) रहित (चिन्मात्रं आत्मानं अयावलम्वे) चैतन्य स्वरूप आत्मा का अवलम्बन करता हूँ ॥३६॥

(आर्या) २३०

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमंतरेणैव
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(कर्मविषतरुफलानि) कर्म रूप विष वृक्ष के फल (मम भुक्ति अन्तरेणैव) मेरे भोग के बिना ही (विगलन्तु) खिर जावें (अचलं चैतन्यात्मानं) निश्चल चैतन्य स्वरूप (आत्मानं अहं संचेतये) आत्मा का मैं अनुभव करता हूँ ॥३७॥

(वसंततिलका) २३१

निःशेषकर्मफलसंन्यसनात्ममैवं,
सर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्वं,
कालावलीयमचलस्य वहत्वनंतं ॥३८॥

अन्वयार्थ—(निःशेषकर्मफलसंन्यसनासात्) समस्त कर्मों के फल का त्याग होने से (सर्वक्रियान्तराविहारानिवृत्तवृत्तेः) सभी अन्य क्रियाओं में प्रवर्तन रूप से रहित वृत्ति वाले (चैतन्यलक्ष्म आत्मतत्वं भृशं भजतः) चैतन्य स्वरूप आत्म तत्त्व को अतिशय रूप से अनुभव करने वाले (अचलस्य) निश्चल (मम) मेरे (इयं) यह (कालावली अनंतं एवं वहतु) काल की आवलि अनंत काल तक प्रवाह रूप से बहे ॥३८॥

(वसंततिलका) २३२

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां,
भुंक्ते फलानि नखलु स्वत एव तृप्तः ।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं,
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां) जो पूर्व काल में किये गये कर्म रूप विष वृक्ष के (फलानि) फलों को (स्वतः न भुंक्ते) निज बुद्धि से नहीं भोगता (खलु) निश्चय से (सः तृप्तः एव) वह निज स्वरूप में संतुष्ट ही है (आपातकालरमणीयं) वर्तमान काल में उदय से सुन्दर (उदर्करम्यं निष्कर्मशर्मभयम्) भविष्य काल में मनोहर कर्मों से रहित सुख रूप (दशान्तरं एति) अवस्थान्तर को प्राप्त करता है ॥३६॥

(स्रग्धरा) २३३

अत्यन्तंभावयित्वाविरतमविरतंकर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टंनाटयित्वाप्रलयनमखिलाज्ञानसंचेतनायाः
पूर्णंकृत्वास्वभावंस्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयतः प्रशमरसमितः सर्वकालंपिवन्तु

अन्वयार्थ—(कर्मणः तत्फलाच्च) कर्म से और कर्मों के फल से (विरतं) विरक्ती को (अविरतं) निरन्तर (अत्यन्तं भावयित्वा) अतिशय रूप से भावना कर (अखिलज्ञानसचेतनायाः) समस्त अज्ञान चेतना के (प्रलयनं प्रस्पष्टं नाटयित्वा) विनाश को भली भाँति नचा के (स्वरसपरिगतं) निज रस में प्राप्त (स्वभावं) स्वभाव को (पूर्णंकृत्वा) पूरा करके (स्वां) अपनी (ज्ञान संचेतनां) ज्ञान रूपी चेतना को (सानन्दं) आनन्द सहित (नाटयन्तः) नचाते हुए (इतः) इस तरह से आगे (सर्वकालं) सदा (प्रशमरसं) प्रशम रूप रस को (पिवन्तु) पियें ॥४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वंशस्थ) २३४

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठना—
द्विनाकृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तुव्यतिरेकनिश्चया—
द्विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४१॥

अन्वयार्थ—(इतः) यहां से आगे (पदार्थप्रथनावगुण्ठनात्) पदार्थों के प्रसार का ज्ञेय ज्ञान संबंध से (कृतेविना) कर्तृत्वादि रूप क्रिया के बिना (अनाकुलं) निराकुल (समस्तवस्तुव्यतिरेक-निश्चयात्) समस्त पदार्थों से भिन्नता का निश्चय होने से (विवेचितं) प्रथक किया गया (एकं ज्ञानं) एक ज्ञान (इह) आत्मा में (ज्वलत्) चमकता हुआ (अवतिष्ठते) स्थित रहता है ॥४१॥

(शार्दूलविक्रीडित) २३५

अन्येभ्योव्यतिरिक्तमात्मनियतंविभ्रत्प्रथक्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथास्यमहिमानित्योदितस्तिष्ठति

अन्वयार्थ—(अन्येभ्यः व्यतिरिक्तं) अन्य पदार्थों से अत्यन्त भिन्न (आत्मनियतं) आत्मा में निश्चित (वस्तुताम्) वस्तुता को अर्थात् सामान्य विशेषात्मकता को (प्रथक्‌विभ्रत्) भिन्न रूप से धारण करता हुआ (आदानोज्झनशून्यं) ग्रहण और त्याग से रहित (अमलं) निर्मल (एतत् ज्ञानं) यह ज्ञान (तथावस्थितम्) उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार से अवस्थित है (यथा) जिस प्रकार से (अस्य) इसकी (मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः) मध्य आदि और अंत रूप विभाग से शून्य स्वाभाविक विशाल प्रभा से प्रकाशमान (शुद्धज्ञानघनः) शुद्ध ज्ञान घन स्वरूप (नित्योदितः) निरन्तर प्रकाशमान (महिमा तिष्ठति) महिमा स्थित रहती है ॥४२॥

(उपजाति) २३६

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य संधारणमात्मनीह

अन्वयार्थ—(यत् उन्मोच्यं) जो छोड़ने योग्य था (तत् अशेषतः उन्मुक्तं) वह परिपूर्ण रूप से छोड़ा गया (तथा) वैसे ही (यत् आदेयं) जो ग्रहण करने योग्य था (तत् अशेषतः आत्तं) वह समग्र रूप से ग्रहण किया गया (संहृतसर्वशक्तेः) एकत्रित हो चुकी हैं समस्त शक्तियें जिसकी ऐसी (पूर्णस्य आत्मनः) परिपूर्ण आत्मा का (इह आत्मनि संधारणं भवति) इस आत्मा में धारण करना होता है ॥४३॥

(अनुष्टुप) २३७

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितम् ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोस्य शंक्यते ॥४४॥

अन्वयार्थ—(एवं परद्रव्यात्) इस प्रकार पर द्रव्यों से (व्यतिरिक्तं) सर्वथा पृथक (ज्ञानं अवस्थितम्) ज्ञान स्थित हुआ (तत् आहारकं) वह ज्ञान कर्म और नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करने वाला (कथं स्यात्) कैसे हो सकता है (येन अस्य देहः शंक्यते) जिससे इस ज्ञान के शरीर की शंका की जा सके ॥४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अनुष्टुप) २३८

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्नलिंगं मोक्षकारणम् ॥४५॥

अन्वयार्थ—(एवं शुद्धस्य ज्ञानस्य देहः एव न विद्यते) इस तरह शुद्ध ज्ञान के शरीर ही नहीं है (ततः ज्ञातुः देहमयं लिंगं मोक्ष कारणं न भवेत्) इस कारण ज्ञाता अर्थात् आत्मा का शरीर रूप लिंग मोक्ष का कारण नहीं हो सकता ॥४५॥

(अनुष्टुप) २३९

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा॥४६

अन्वयार्थ—(आत्मनः तत्वं दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा) आत्मा का स्वरूप दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों का एकत्वरूप है इसलिए (मुमुक्षुणा) मोक्ष को चाहने वाले (सदा) हमेशा (एक एव) एक ही (मोक्षमार्गः सेव्यः) मोक्षमार्ग का सेवन करें ॥४६॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४०

एको मोक्षपथो य एषनियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्यात्मक
स्तत्रैवस्थितिमेति यस्तमनिशंध्यायेच्चतं चेतति
तस्मिन्नेवनिरंतरंविहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्यसारमचिरान्नित्योदयं विन्दति

अन्वयार्थ—(यः) जो (एषः) यह (दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकः) दर्शन ज्ञान और चारित्र रूप (एकः मोक्षपथः) एक मोक्ष का मार्ग (नियतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्ति) निश्चित है (तत्रैव) उसी में ही (यः स्थितिं एति) जो स्थिति को प्राप्त करता है (अनिशं तं ध्यायेत्) निरंतर उसका ध्यान करता है (च) और (तं) उसी का (चेतति) चिंतन करता है (द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्) अन्य द्रव्यों का स्पर्श नहीं करते हुए (तस्मिन्नेव) उसी में ही निरंतरं) निरंतर (विहरति) विहार करता है (सः नित्योदयं समयस्यसारं) वह निरंतर उदीयमान आत्मा के सार को (अचिरात्) शीघ्र ही (अवश्यं विन्दति) अवश्य प्राप्त करता है ॥४७॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४१

येत्वेनं परिहृत्य संवृतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिंगे द्रव्यमये वहन्तिममतां तत्वाववोधच्युताः
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्यसारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते

अन्वयार्थ—(ये) जो पुरुष (एनं) इस मोक्षमार्ग को (तु) तो (परिहृत्य) छोड़ कर (संवृतिपथप्रस्थापितेन) समीचीन व्यवहार मार्ग में स्थापित हुए (आत्मना) अपने द्वारा (द्रव्यमये लिंगे ममतां वहन्ति) द्रव्यरूप वेप में ममता को धारण करते हैं (ते) वे (तत्वाववोधच्युताः) तत्वज्ञान से शून्य होते हुए (नित्योद्योतं अखण्डं) निरन्तर प्रकाशमान अखण्ड (एकं अतुलालोकम् स्वभावप्रभाप्राग्भार) एक अनुपम प्रकाशवान स्वभाव की कान्ति से अत्यन्त असह्य (अमलं समयस्यसारं अद्यापि न पश्यन्ति) निर्मल आत्मा के सार को आज तक भी नहीं देखते हैं।

(वियोगनी) २४२

व्यवहारविमूढदृष्टयःपरमार्थं कलयन्ति नो जनाः
तुषवोधविमुग्धवुद्धयःकलयंतीहतुषं न तंदुलम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(व्यवहारविमूढदृष्टय:) व्यवहार में विमुग्ध दृष्टि वाले (जना:) मनुष्य (परमार्थं) परमार्थ को (नो कलयन्ति) नहीं जानते हैं (इह) इस लोक में (तुषबोधविमुग्धबुद्धय:) तुष में ही तंदुल के ज्ञान से विमुग्ध बुद्धि वाले (तुषं) तुष को (तंदुलं कलयन्ति) तंदुल जानते हैं (तंदुलं) तंदुल को (न कलयन्ति) तंदुल नहीं जानते ॥४९॥

(स्वागता) २४३

द्रव्यलिंगममकारमीलितैर्दृश्यतेसमयसारएव न
द्रव्यलिंगमिहयत्किलान्यतोज्ञानमेकमिदमेवहिस्वतः

अन्वयार्थ—(द्रव्यलिंगममकारमीलितैः) द्रव्यलिंग में ममत्व बुद्धि से अन्धे (समयसारः एव न दृश्यते) आत्मा के सार को ही नहीं देखते (इह) इस लोक में (यत् द्रव्यलिंगं) जो द्रव्यलिंग है (तत्तु) वह तो (अन्यतः एव भवति) अन्य द्रव्य से ही होता है और (इदं) यह (एकं ज्ञानं) एक ज्ञान (हि) निश्चय कर (स्वतः एव भवति) आत्मा से ही होता है ॥५०॥

(मालिनी) २४४

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै ।
रयमिह परमार्थश्चिन्त्यतां नित्यमेकः ॥
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा ।
न्न खलु समयसारा दुत्तरं किञ्चिदस्ति ॥

अन्वयार्थ—(अनल्पैः) बहुत (अतिजल्पैः) ज्यादा बकवाद और (दुर्विकल्पैः) दुर्विकल्प (अलं अलं) व्यर्थ है व्यर्थ है (इह) इस समय-सार ग्रन्थ में (अयं एकः) यह एक (परमार्थः) परमार्थ का (नित्यं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिन्त्यतां) निरंतर चिन्तवन करना चाहिए (स्वरसविसरपूर्णज्ञान विस्फूर्तिमात्रात्) निज रस के फैलावरूप और पूर्णज्ञान से स्फुरायमान (समयसारात्) समयसार से (उत्तरं) अधिक (खलु) और (किंचित् नास्ति) कुछ भी नहीं है ॥५१४॥

(अनुष्टुप) २४५

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत् ॥५२॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह समय प्राभृतशास्त्र (अक्षयं) अविनाशी (एकं) एक असाधारण (जगत्चक्षु) जगत का नेत्र रूप (विज्ञानघनं) विज्ञान घन (आनन्दमयं) आनन्दमय समयसार का (अध्यक्षतां नयत्) प्रत्यक्ष कराता हुआ (पूर्णतां याति) पूर्णता को प्राप्त होता है ॥५२॥

(अनुष्टुप) २४६

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितं।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ॥५३॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (इदं आत्मनः) यह आत्मा का (तत्वं) स्वरूप (ज्ञानमात्रं) ज्ञानप्रमाण (अवस्थितं) निश्चित हुआ जो (अखण्डं) अखण्ड है (एकं) एक है (अचलं) निश्चल है (स्वसंवेद्यं) स्वसंवेद्य है और (अबाधितं) बाधा कर रहित है ॥५३॥

इति सर्व विशुद्धि अधिकारः

॥ अथ परिशिष्टाधिकारः प्रारभ्यते ॥

(अनुष्टुप) २४७

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिंत्यते ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वतार्थ—(अत्र) इस अधिकार में (स्याद्वादशुद्ध्यर्थं) स्याद्वाद की शुद्धि के लिए (वस्तुतत्वव्यवस्थितिः) वस्तु स्वरूप की व्यवस्था का (च) और (उपायोपेयभावः) ज्ञान में उपाय भाव और उपेय भाव का (मनागपि भूयः) थोड़ा सा भी अतिशय रूप से (चिंत्यते) विचार करें ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४८

वाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभव
द्विश्रान्तंपररूप एवपरितो ज्ञानंपशोःसीदति ॥
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपतइति स्याद्वादिनस्तत्पुनः ।
दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति ॥

अन्वयार्थ—(पशोः) अज्ञानी अर्थात् एकान्तवादी का (यत् ज्ञानं) जो ज्ञान (वाह्यार्थैः) वहिर्भूत पदार्थों से (परिपीतं) पिया गया है परिपूर्ण रूप से (उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्) छोड़ी हुई अपनी विशेषताओं से शून्य होता हुआ (परितः) सब तरफ से (पररूपेएव) पर रूप में ही (विश्रान्तं) विलय को प्राप्त हुआ (तत्) वह ज्ञान (सीदति) नष्ट हो जाता है (स्याद्वादिनः) लेकिन स्याद्वादी के (तत) वह ज्ञान (इह) इस आत्मा में (स्वरूपतः) स्वरूप से है (तत्) वह ज्ञान (तत) निज रूप है (इति) इस प्रकार (पुनः तत) और वह ज्ञान (दूरोन्मग्नवनस्वभावभरतः) अतिशय रूप से प्रगट घनस्वभाव के समूह से (पूर्णं) परिपूर्ण रूप से (समुन्मज्जति) उदित रहता है ॥२॥

(शार्दूलविक्रीडित) २४९

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्यसकलंदृष्ट्वास्वतत्त्वाशया
भूत्वाविश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्तत्तत्पररूपतो न तदितिस्याद्वाददर्शीपुन—
र्विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्यस्वतत्वं स्पृशेत्

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी एकान्तवादी (विश्वं) समस्त पदार्थों को (ज्ञानं) ज्ञान रूप है (इति) ऐसी (प्रतर्क्य) तर्कणाकर (सकलं) सम्पूर्ण जगत को (स्वतत्वाशयाः) निजतत्व की आशा से (दृष्ट्वा) देख कर (विश्वमयः) समस्त पदार्थरूप (भूत्वा) होकर (पशुइव) पशु के समान (स्वच्छन्दं) स्वच्छन्दरूप से (आचेष्टते) चेष्टा करता है (पुनः) किन्तु (स्याद्वाददर्शी) स्याद्वाद से वस्तुतत्व को देखने वाला (यत्) जो ज्ञान (पररूपतः) पररूप से होता है (तत्) वह ज्ञान (तत् न) ठीक अर्थात् सच्चा ज्ञान नहीं है (इति) इस प्रकार (विश्वात् भिन्नम्) समस्त पदार्थों से भिन्न (विश्वघटितं) समस्त पदार्थों से घटित होता हुआ भी (अविश्व) समस्त पदार्थरूप नहीं तो भी (तस्य) उस पदार्थ के समुदाय रूप (स्वतत्त्वं) निजतत्त्व को (स्पृशेत्) अनुभव करता है ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५०

वाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतोविष्वग्विचित्रोल्लसद् ।
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति ॥
एकद्रव्यतयासदाव्युदितयाभेदभ्रमंध्वंसयन् ।
नेकं ज्ञानमवाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी एकान्तवादी (वाह्यार्थग्रहणस्वभाव भरतः) वाह्यपदार्थों के ग्रहण रूप स्वभाव के भारसे (विष्वग्विचित्रोल्लसत्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिः) समस्त नाना प्रकार से शोभमान पदार्थों के आकार से नष्ट हो गई है शक्ति जिसकी ऐसा होता हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अभितः) सब तरह से (त्रुटयन्) टूटता हुआ (नश्यति) नष्ट हो जाता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्तवादी ज्ञानी तो (एकद्रव्यतया) एक द्रव्य से (सदा) निरंतर (अभ्युदिततया) उदित रहने से (भेदभ्रमं) भेद के भ्रम को (ध्वंसयत्) नाश करते हुए (एकं) एक (अबाधितानुभवन्) बाधा रहित है अनुभव जिसका ऐसे (ज्ञानं न पश्यति) ज्ञान को नहीं देखता ॥४॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५१

ज्ञेयाकारकलंकमेचकचितिप्रक्षालनं कल्पयन्
नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानंस्वतःक्षालितं
पर्य्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित्

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी एकान्तवादी (ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति) ज्ञेय पदार्थों के आकारों से कलंक को प्राप्त हुए अनेक आकार रूप से मलिन चैतन्य में (एकाकारचिकीर्षया) एक चैतन्यस्वरूप आकार को करने की इच्छा से अनेक आकारों के (प्रक्षालनं कल्पयन्) प्रक्षालन को करता हुआ (स्फुटं ज्ञानं अपि नेच्छति) अनेक आकाररूप स्पष्ट ज्ञान को भी नहीं चाहता अर्थात् ज्ञान का नाश करता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्त के स्वरूप का ज्ञाता स्याद्वादी (वैचित्र्येऽपि अविचित्रतां) अनेकाकाररूप से विचित्र होने पर भी एकाकारता को (उपगतं) प्राप्त हुए (स्वतः क्षालितं पर्यायैः अनेकतां) स्वयमेव शुद्ध किये गये पर्यायों से अनेकाकारता को (तत् ज्ञानं परिमृशन् पश्यति) उस ज्ञान को स्पर्श करता हुआ अनुभव करता है ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(शार्दूलविक्रीडित) २५२

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचितः
स्वद्रव्यानवलोकनेनपरितःशून्यःपशुर्नश्यति
स्वद्रव्यास्तितयानिरूप्यनिपुणंसद्यःसमुन्मज्जता
स्याद्वादीतुविशुद्धबोधमहसा पूर्णोभवन्जीवति

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (प्रत्यक्षालिखित-स्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावंचितः) प्रत्यक्ष प्रमाण से चित्रलिखित स्पष्ट और निश्चल पर द्रव्य के अस्तित्व से ठगाया गया (स्वद्रव्यानव-लोकनेन) अपने आत्मद्रव्य के अस्तित्व को नहीं देखने से (परितः) परिपूर्णरूप से (शून्यः) शून्य होता हुआ (नश्यति) नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादीतो (स्वद्रव्यास्तितया) [अपने आत्म द्रव्य के अस्तित्व से (निपुणं) भलीभाँति (निरूप्य) आत्मद्रव्य को देखकर (सद्यः) उसी समय ही (समुन्मज्जता) प्रगट हो रहे (विशुद्ध बोधमहसा) निर्मलज्ञानरूप तेज से (पूर्णोभवन् जीवति) परिपूर्ण होता हुआ जीवित रहता है अर्थात् नाश को प्राप्त नहीं होता ॥६॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५३

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः।
स्वद्रव्यभ्रमतःपशुःकिलपरद्रव्येषुविश्राम्यति
स्याद्वादीतुसमस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मनानास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमास्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (पुरुषं) आत्मा को (सर्वं द्रव्यमयं प्रपद्य) सम्पूर्ण द्रव्यमय स्वीकार कर (दुर्वासनावासितः) दुर्नय की वासना से वासित होता हुआ (स्वद्रव्यभ्रमतः) अपने आत्मद्रव्य के भ्रम से (परद्रव्येषुकिल विश्राम्यति) पर द्रव्यों में प्रगटरूप से विश्राम करता है अर्थात् पर में ही आत्मत्व को मानता है (स्याद्वादीतु समस्त वस्तुषु) स्याद्वादी तो समस्त पदार्थों में (परद्रव्यात्मना) परद्रव्यरूप से आत्मद्रव्य की (नास्तितां जानन्) नास्तिता को अर्थात् अभाव को जानता हुआ (निर्मलशुद्धबोधमहिमा) निर्मल शुद्ध ज्ञान की है महिमा जिसमें ऐसे (स्वद्रव्यं आश्रयेत्) निज द्रव्य का ही आश्रय लेता है ॥७॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५४

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा
सीदत्येव बहिःपतन्तमभितः पश्यन्पुमांसं पशुः
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदीपुन-
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन्

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोधनियतव्यापारनिष्ठः) भिन्न क्षेत्र में स्थित ज्ञेय पदार्थों के निश्चित ज्ञेय ज्ञायिक संबन्धरूप व्यापार में स्थित होता हुआ (बहिः) बाह्य पदार्थों में (अभितः) समग्ररूप से (पतन्तं) गिरने वाले (पुमांसं) आत्मा को (पश्यन्) देखता हुआ (सदैव) हमेशा ही (सीदति) दुखी होता है (पुनः स्याद्वादवेदी) किन्तु स्याद्वाद का जानने वाला (स्वक्षेत्रास्तितया) अपने क्षेत्र में अपने अस्तित्व के द्वार (निरुद्धरभसः) अपने वेग को रोकने से (आत्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिः) अपने क्षेत्र में ही ज्ञेयपदार्थों के निश्चित ज्ञेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञायिक सम्बन्धरूप व्यापाररूप शक्ति वाला (भवन् तिष्ठति) होता हुआ स्थित रहता है ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५५

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झना
त्तुच्छीभूयपशुःप्रणश्यतिचिदाकारात्सहार्थैर्वसन्
स्याद्वादी तु वसनस्वधामनिपरक्षेत्रेविदन्नास्तितां
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षीपरान्

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्) अपने क्षेत्र में स्थित होने के लिये भिन्न भिन्न विधान वाले पर क्षेत्रों में स्थित रहने वाले पदार्थों को छोड़ने से (तुच्छीभूय) तुच्छ होकर (चिदाकारान्) चैतन्यरूप पदार्थों के आकारों को (अर्थैःसह वमन्) पर पदार्थों के साथ वमन करता हुआ अर्थात् छोड़ता हुआ (प्रणश्यति) नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (स्वधामिनि वसन्) अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ (परक्षेत्रे नास्तितां विदन्) पर पदार्थ के क्षेत्र में अपने आत्म द्रव्य के अभाव को जानता हुआ (त्यक्तार्थाःअपि) पर पदार्थों को छोड़ता हुआ भी (परान्अकारकर्षी) पर पदार्थों के आकारों को खींचता हुआ (तुच्छतां न अनुभवति) तुच्छता का अनुभव नहीं करता है ॥ ९ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५६

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किंचनापि कलयन्नत्यन्ततुच्छःपशुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तित्वंनिजकालतोऽस्यकलयन्स्याद्वादवेदीपुनः
पूर्णस्तिष्ठतिवाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वाविनश्यत्स्वपि

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (पूर्वालम्बित बोध्यनाशसमये) पूर्व समय में आलम्बन को प्राप्त हुए पदार्थों के नाश के समय में (ज्ञानस्य नाशं विदन्) ज्ञान के नाश को जानता हुआ (किंचनापि न कलयन्) और कुछ भी नहीं जानता हुआ (अत्यन्त तुच्छः सन्) अत्यन्त तुच्छ होता हुआ (सीदति एव) दुखी ही होता है (पुनःस्याद्वादवेदी) किन्तु स्याद्वाद को जानने वाला (निजकालतः) अपने समय से (अस्य अस्तित्वं कलयन्) इस आत्मा के अस्तित्व को जानता हुआ (वाह्यवस्तुषु) वाह्य पदार्थों में (मुहुर्भूत्वा) वार वार उत्पन्न होकर (विनश्यत्स्वपि) नाश को प्राप्त होने पर भी (पूर्णःतिष्ठति) परिपूर्ण रूप से स्थित रहता है ॥ १० ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५७

अर्थालम्वनकाल एव कलयन् ज्ञानस्यसत्वं वहि
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन्पशुर्नश्यति
नास्तित्वंपरकालतोऽस्य कलयन्स्याद्वादवेदीपुन
स्तिष्ठत्यात्मनिखातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन्

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (अर्थालम्बन काले) पदार्थों के आलम्बन के समय में (एव) ही (ज्ञानस्य सत्वं-कलयन्) ज्ञान के सद्भाव को जानता हुआ (वहिर्ज्ञेयालम्बनलाल-सेनमनसा) वाह्यपदार्थों के आलम्बन में अनुरागी चित्त से (भ्राम्यन् नश्यति) भ्रमण करता हुआ नाश को प्राप्त होता है (पुनःस्याद्वाद-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदी) किन्तु स्याद्वाद को जानने वाला (परकालतः) पर द्रव्य के समय में (अस्य नास्तित्वं कलयन्) अपने आत्म द्रव्य के अस्तित्वाभाव को जानता हुआ (स्वातनित्यसहजज्ञानैकपुंजीभवन्) अपने में स्थित नित्य अविनाशी स्वाभाविक ज्ञान का एक पुंज होता हुआ (आत्मनि तिष्ठति) अपने में ही स्थित रहता है ॥ ११ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५८

विश्रान्तःपरभावभावकलनान्नित्यंवहिर्वस्तुषु ।
नश्यत्येवपशुःस्वभावमहिन्येकान्तनिश्चेतनः ॥
सर्वस्मान्नियतस्वभावमभवन् ज्ञानाद्विभक्तोभवन्
स्याद्वादीतु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः १२

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (परभावभाव कलनात्) पर पदार्थों के भावों में निज अनुभव के ज्ञान से (नित्यं) निरंतर (वहिर्वस्तुषु) वाह्य वस्तुओं में (विश्रान्तः) विश्राम करता हुआ (स्वभावमहिमनि) निज भावकी महिमा में (एकान्तनिश्चेतनः) एकान्त रूप से जड होता हुआ (नश्यतिएव) नाश को ही प्राप्त करता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (सर्वस्मात) सभी पदार्थों में (नियत-स्वभावमभवन् ज्ञानात्) निश्चित अपने अपने भावों के उत्पन्न होने रूप ज्ञान से (विभक्तः भवन्) प्रथक होता हुआ (सहजस्पष्टीकृत-प्रत्ययः) स्वाभाविक प्रत्यक्ष किये गये ज्ञान रूप होने से (नाशं) नाश को (न एति) प्राप्त नही होता ॥ १२ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २५९

अध्यास्यात्मनिसर्वभावभवनंशुद्धस्वभावच्युतः
सर्वत्राप्यनिवारितोगतभयःस्वैरंपशुःक्रीडति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्वादीतुविशुद्धएवलसति स्वस्य स्वभावंभरा-
दारूढःपरभावभावविरहव्यालोकनिष्कंपितः ।१३

अन्वयार्थ - (पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (सर्वभावभवनं) समस्त पर पदार्थों के भावों की उत्पत्ति का (आत्मनि) अपने आत्म द्रव्य में (अध्यास्य) निश्चयकर (शुद्धस्वभावच्युतः) अपने आत्मा के शुद्ध स्वभाव से च्युत हुआ (सर्वात्रापि) सभी अन्य पदार्थों में (अनिवारितः) बेरुकावट (गतभयः) निर्भय हो (स्वैरं) इच्छानु-सार (क्रीडति) क्रीड़ा करता है (स्याद्वादी तु स्वस्य स्वभावं भरात्) स्याद्वादी तो अपने स्वभाव के भार से (आरूढ़ः) स्थित हुआ (पर-भावभावविरहव्यालोकनिष्कम्पितः) पर पदार्थों के भावों का अपने भावों में अभाव को देखने से निश्चल हुआ (विशुद्धः एव लसति) विशुद्धरूप से ही शोभित होता है ॥ १३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २६०

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद् ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभंगसंगपतितःप्रायःपशुर्नश्यति
स्याद्वादीतुचिदात्मनापरिमृशंश्चिद्वस्तुनित्योदितं
टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानंभवन्जीवति ।१४

अन्वयार्थ--(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (प्रादुर्भाव--विरामसमुद्रितवहद् ज्ञानांशनानात्मना निर्ज्ञानात्) उत्पत्ति और विनाशरूप मुद्रा के धारक ज्ञान के अंशों से नाना रूपता के निश्चयात्मक ज्ञान से (क्षणभंगसंगपतितः) क्षण नश्वर संबन्ध में पड़ा हुआ (प्रायः नश्यति) प्रायः करके नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादी तु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्वादी तो (चिदात्मनानित्योदितं) चैतन्यरूप से नित्य उदयरूप (चिद्वस्तु परिमृशन्) चैतन्यात्मक आत्म द्रव्य का निश्चय करता हुआ (टंकोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं) टंकोत्कीर्ण घन स्वभावमहिमा स्वरूप ज्ञानरूप (भवन् जीवति) होता हुआ जीवित रहता है ॥ १४ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २६१

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया
वांछत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नंपशुःकिंचन
ज्ञानंनित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्वलं
स्याद्वादीतदनित्यतांपरिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्१५

अन्वयार्थ—(पशुः) अज्ञानी सर्वथा एकान्तवादी (टंकोत्कीर्ण विशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया) टंकोत्कीर्ण निर्मल ज्ञान के फैलाव रूप आकार स्वरूप आत्म तत्त्व की आशा से (उच्छलदच्छचित्परिणतेः) उछलती हुई स्वच्छ चैतन्य की परिणति से (भिन्नं किंचन) भिन्न किसी इष्ट आत्म द्रव्य को (वाञ्छति) चाहता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (नित्यं ज्ञानं अनित्यता परिगमे अपि) नित्य ज्ञान के अनित्यता को प्राप्त होने पर भी (चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्) चैतन्य द्रव्य की प्रवृत्ति के क्रम से (तद् अनित्यतां) उस ज्ञान की अनित्यता को (परिमृशन्) निश्चय करता हुआ (उज्वलं आसादयति) निर्मल ज्ञान को ही स्वीकार करता है ॥१५॥

(अनुष्टुप) २६२

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसादयन् ।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (अज्ञानविमूढ़ानां) अज्ञान से व्यामोह को प्राप्त हुए प्राणियों के (आत्मतत्त्वं) आत्म तत्व को (ज्ञानमात्रं) ज्ञान स्वरूप (प्रसादयन्) साधता हुआ (अनेकान्तः) अनेकान्त सिद्धान्त (स्वयमेव) स्वयं ही (अनुभूयते) अनुभव में आता है ॥१६॥

(अनुष्टुप) २६३

एवंतत्वव्यवस्थित्या स्वंव्यवस्थापयन्स्वयम् ।
अलंघ्यंशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥१७

अन्वयार्थ—(एवं तत्त्वव्यवस्थित्या) इस प्रकार वस्तु के यथार्थ स्वरूप की व्यवस्था से (स्वयमेव) स्वयमेव (स्वं) आत्म स्वरूप को (व्यवस्थापयन्) स्थापन करता हुआ (अलंघ्यं) उल्लंघन के अयोग (जैनं शासनं) जैन शासन (अनेकान्तः व्यवस्थितः) अनेकान्त रूप से स्थित हुआ ॥१७॥

(वसंततिलका) २६४

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि—
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं—
तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥१८॥

अन्वयार्थ—(इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोपि) इस प्रकार पूर्वोक्त अपनी शक्तियों की निर्मलता के समूह से भरपूर (यः) जो (भावः) भाव (ज्ञानमात्रमयतां) ज्ञान मात्र स्वरूपता को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(न जहाति) नहीं छोड़ता है (एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं) इस प्रकार क्रम और अक्रम से होने वाले परिणामों से विचित्र (द्रव्यपर्यय मयं) द्रव्य और पर्याय स्वरूप (चित्) चैतन्यात्मक (तत्) वह ज्ञान मय (वस्तु) वस्तु (इह अस्ति) इस लोक में है ॥१८॥

(वसंततिलका) २६५

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ।
ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(स्वयमेव) वह वस्तु स्वयमेव ही (नैकान्तसंगतदृशा) अनेकान्त रूप से प्राप्त हुई दृष्टि के द्वारा (इति) इस प्रकार (वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिं) वस्तु तत्त्व की व्यवस्था को (प्रविलोकयन्तः) देखने वाले (सन्तः) सज्जन (अधिकां) अधिक (स्याद्वाद शुद्धिं) स्याद्वाद की शुद्धि को (अधिगम्य) जानकर (जिननीतिं) जिननेन्द्रदेव के अनेकान्त सिद्धान्त को (अलंघयन्तः) उल्लंघन नहीं करते हुए (ज्ञानी भवन्ति) ज्ञानी होते हैं ॥१६॥

(वसंततिलका) २६६

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां ।
भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीत मोहाः ॥
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धाः ।
मूढ़ास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(अपनीतमोहाः) मोह रहित (ये) जो पुरुष (ज्ञानमात्रनिजभावमयीं) ज्ञान स्वरूप निज स्वभाव वाली (अकम्पां) अविचल (भूमिं) भूमि को (कथमपि) किसी भी प्रकार से (श्रयन्ति) आश्रय करते हैं (ते) वे पुरुष (साधकत्वम् अधिगम्य) साधकपने को स्वीकार कर (सिद्धाः भवन्ति) सिद्ध होते हैं (मूढ़ास्तु) अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो (अमूम्) इस भूमि को (अनुपलभ्य) विना प्राप्त किये ही (परिभ्रमन्ति) परिभ्रमण करते हैं ॥२०॥

(वसंततिलका) २६७

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां ।
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ॥
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री—
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो पुरुष (इह) निज आत्म द्रव्य में (उपयुक्तः) लगा हुआ (अहरहः) प्रति समय (स्याद्वादकौशल सुनिश्चलसँयमाभ्यां) स्याद्वाद की कुशलता और निश्चल चारित्र से (स्वं) अपने आत्मा को (भावयति) अनुभव करता है (स एकः) वह एक (ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः) ज्ञान रूप नय और क्रिया नयों में एक दूसरे की बड़ी मित्रता के योग्य की गई (इमां) इस निज भाव रूप (भूमिं) भूमि का (श्रयति) आश्रय करता है ॥२१॥

(वसंततिलका) २६८

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धः प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूप—
स्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तस्यैव) उस पुरुष के ही । चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः) चैतन्य के पिंड का प्रचण्ड है विलास जिसमें ऐसे विकाश रूप हास वाला (शुद्धः प्रकाशभरनिर्भर सुप्रभातः) शुद्ध प्रकाश के भार से भरे हुए उत्तम प्रातःकाल के तुल्य (आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपः) आनन्द से भलीभांति स्थित निरन्तर निश्चल एक रूप वाला (अयं अचलार्चिः) यह निश्चल तेज पुंज वाला (आत्मा उदयति) आत्मा उदय को प्राप्त होता है ॥२२॥

(वसंततिलका) २६६

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे ।
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ॥
किं बंधमोक्षपथपातिभिरन्यभावै ।
र्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥२३॥

अन्वयार्थ—(स्याद्वाददीपितलसन्महसि) स्याद्वाद के प्रकाश से शोभित हो रहा है तेज जिसमें (शुद्धस्वभावमहिमनि) शुद्ध स्वभाव की है महिमा जिसमें ऐसे (इति) इस प्रकार का (प्रकाशे) प्रकाश (मयि) मेरे में (उदिते) उदय होने पर (बंधमोक्षपथपातिभिः) बंध और मोक्ष मार्ग से गिराने वाले (अन्यभावैः किं) परभावों से क्या प्रयोजन है (नित्योदयः) निरन्तर उदय रूप (अयं) यह (स्वभावः) स्वभाव (परं) सर्वोत्कृष्ट रूप से (स्फुरतु) स्फुरायमान रहे ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वसंततिलका) २७०

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा ।
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखण्ड्यमानः ॥
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेक—
मेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२४॥

अन्वयार्थ—(चित्रात्मशक्तिसमुदामयः) नाना प्रकार की निज शक्तियों का समुदाय रूप (नयेक्ष॰ खँडमानः) नयों की दृष्टि से खंड रूप भिन्न हुआ (अयं आत्मा) यह आत्मा (सद्यः प्रणश्यति) तत्काल नाश को प्राप्त होता है यह पर्याय दृष्टि है (तस्मात्) इसलिये (अहं अनिराकृतखंडं) मैं नहीं खंडित हुए हैं खंड जिसके ऐसा (अखंडं एकं) अखंड एक (एकान्तशान्तम्) एकान्त रूप से शान्त और (अचलंचित् महोस्मिः) अचल चैतन्य रूप तेज वाला हूँ ॥२४॥

(शालिनी) २७१

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेय ज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गद्—
ज्ञानज्ञेयज्ञातृवद्वस्तुमात्रः ॥२५॥

अन्वयार्थ—(यः अयं ज्ञानमात्रः भावः) जो यह ज्ञानरूपभाव है (सः) वही (अहं अस्मि) मैं हूँ (ज्ञेयः) आत्मा से भिन्न पदार्थ (ज्ञेयः) ज्ञेय हैं लेकिन (सः) वह ज्ञेय (ज्ञानमात्रः नैव) ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप नहीं है किन्तु (ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गत्) ज्ञेय पदार्थों के आकारों की ज्ञानरूप तरङ्गों से उछलता हुआ (ज्ञानज्ञेय ज्ञातृमत्) ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता रूप (वस्तुमात्रः) वस्तु मात्र (ज्ञेयः) ज्ञेय है ॥ २५ ॥

(पृथ्वी) २७२

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिदमेचकामेचकः ।
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ॥
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः ।
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(मम तत्त्वं क्वचित् मेचकं लसति) मेरा आत्मतत्त्व कहीं अनेकाकार मालूम होता है और (क्वचित् मेचकामेचकं) कहीं अनेकाकार और कहीं एकाकार मालूम होता है (पुनः क्वचित् अमेचकं) और कहीं पर एकाकार मालूम होता है किन्तु वह (सहजं एव) स्वभावरूप ही है (तथापि तत् अमलमेधसां) तो भी वह निर्मल बुद्धिमानों के (मनः न विमोहयति) चित्तको विमुग्ध नहीं करता (परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं) क्योंकि वह परस्पर की अच्छी तरह से मिलती हुई प्रगट रूप शक्तियों का समुदायमय (स्फुरत) स्फुरायमान रहता है ॥ २६ ॥

(पृथ्वी) २७३

इतोगतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता—
मितः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै ।
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥२७॥

अन्वयार्द—(इतः) एक तरफ (अनेकतां) अनेकपने को (गतं) प्राप्त हुआ (इतः) एकतरफ (सदापि) निरंतर (एकतां) एकताको (दधत्) धारण करता हुआ (इतः) एकतरफ (क्षणविभंगुरं) क्षणभंगुर (इतः) एकतरफ (सदैव) निरंतर ही (उदयात्) उदय से (ध्रुवं) ध्रुव (इतः) एक तरफ (परमविस्तृतं) परम विस्ताररूप (इतः) एक तरफ (निजैःप्रदेशैः धृतं) अपने प्रदेशों से धारण किया गया (आत्मनः तत् इदं सहजं) आत्मा का वह, यह स्वाभाविक (अद्भुतं वैभवं) विचित्र वैभव है (अहो) यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ २७ ॥

(पृथ्वी) २७४

कषायकलिरेकतः स्खलतिशांतिरस्त्येकतो ।
भवोपहतिरेकतः स्पृशतिमुक्तिरप्येकतः ॥
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरतिचिच्चकास्त्येकतः ।
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुताद्भुतः ।२८।

अन्वयार्थ—(एकतः) एक तरफ (कषायकलिः) कषायों की पीड़ा (स्खलति) है (एकतः शान्तिः अस्ति) एक तरफ शान्ति अर्थात् कषायों का अभाव है (एकतः भवोपहतिः) एक तरफ संसार की पीड़ा है (एकतः मुक्तिः अपि स्पृशति) एक तरफ मुक्ति भी स्पर्श करती है (एकतः जगत्त्रितयं स्फुरति) एक तरफ तीनों जगत् स्फुरायमान है (एकतः चित् चकास्ति) एक तरफ चैतन्य ही शोभित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है इस तरह (आत्मनः अद्भुतात् अद्भुतः) आत्मा की अद्भुत से अद्भुत (स्वभावमहिमा विजयते) स्वभाव की महिमा विजय को प्राप्त हो ॥ २८ ॥

(मालिनी) २७५

जयति सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकी ।
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एवस्वरूपः ॥
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्वोपलम्भः ।
प्रसभनियमितार्च्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(सहजतेजः पुंजमज्जत्त्रिलोकीस्खलदखिल विकल्पः) स्वाभाविक प्रकाश समुदाय में प्रतिबिम्बित तीन लोक के पदार्थों के स्फुरायमान हैं समस्त विकल्प जिसमें ऐसा होता हुआ भी (एक स्वरूपः एव) एक स्वरूप ही है (स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्वोपलम्भः) आत्मिक रस के विस्तार से परिपूर्ण व्यच्छेद—अर्थात् नूनता रहित तत्वों की है प्राप्ति जिसमें और (प्रसभनियमितार्च्चि] स्पष्ट रूप निश्चित है तेज जिसका ऐसा (एषः चिच्चमत्कारः जयति) यह चैतन्य का चमत्कार जयशील हो ॥ २६ ॥

(मालिनी) २७६

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म—
न्यनवरतनिमग्नं धारयद्ध्वस्तमोहम् ॥
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता—
ज्ज्वलतु विमलपूर्णनिःसपत्नस्वभावं ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्वयार्थ—(अविचलितचिदात्मनि) निश्चल चैतन्य स्वरूप आत्मा में (आत्मना) अपने द्वारा (अनवरतनिमग्नं) निरंतर-लीन (आत्मानं) अपने को (धारयत्) धारण करता हुआ (ध्वस्तमोहं) अंधकार का नाशक (निःसपत्नस्वभावं) कर्मरूप वैरियों से शून्य है स्वभाव जिसका (विमलपूर्णं) निर्मल और परिपूर्ण (उदितं) उदय को प्राप्त हुआ (एतत्) यह (अमृतचन्द्रज्योतिः) अमृत रूप चन्द्रमा के समान प्रकाश (समंतात् ज्वलतु) सब तरफ प्रकाशमान रहे ॥ ३० ॥

(शार्दूलविक्रीडित) २७७

यस्माद्द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः
भुंजाना च यतोनुभूतिरखिलंखिन्नाक्रियायाःफलं
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुनाकिंचिन्नकिंचित्किल ॥

अन्वयार्थ—(यस्मात् पुरा स्वपरयोः द्वैतं अभूत्) जिस अज्ञान से पूर्व समय में अर्थात् अनादि से स्वयं कहिये अपनी और पर की द्वैतरूप एकता हुई (यतः अत्र अन्तरं भूतं) जिस द्वैत से इस आत्मा में अन्तर्भूत हुआ (यतः) और जिस अन्तर से (रागद्वेषपरिग्रहे सति क्रियाकारकैः) रागद्वेषरूप परिग्रह के होने पर क्रिया और कारक (जातं) हुए (यतः) जिस क्रियाकारक से (क्रियायाः अखिलं फलं भुंजानाः अनुभूतिः) क्रिया के समस्त फल को भोक्ती हुई स्वानुभूति (खिन्ना) विकार को प्राप्त हुई (तत अधुना-विज्ञानघनौघमग्नं) वह अज्ञान इस समय विज्ञान घन समुदाय में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लीन हुआ (किल किंचित् किंचित् न) निश्चय से कुछ भी मालूम नहीं होता ॥ ३१ ॥

(उपजाति) २७८

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वै—
 व्याख्याकृतेयं समयस्यशब्दैः ॥
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति
 कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥३२॥

अन्वयार्थ –(स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वैः) अपनी शक्ति से प्रगट कर दिया है समस्त वस्तु के स्वरूप को जिन्होंने ऐसे (शब्दैः) शब्दों से (समयस्य) आत्मा और समयसार नामा शास्त्र की (इयं) यह (व्याख्या कृता) व्याख्या की गई है (स्वरूपगुप्तस्य) आत्मस्वरूप में लीन (मम) मुझ (अमृतचन्द्रसूरेः) अमृत चन्द्र आचार्य का (किंचित् कर्तव्यमेव न अस्ति) कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजी कृत

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥
पाये अनन्ते दुख अबतक, जगत को निज जानकर ॥
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, कर्म नहिं पहिचानकर।
भव बंध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर ॥
निज पर विवेचन ज्ञानमय सुखनिधि सुधा नहिं पानकर ॥१॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञानकला उर जागी. रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सत संग में अब मन लगा।
मनमें हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा ॥
प्रिय वचन की हो टेव गुण गणि. गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन में भगै ॥२॥

अब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममता मय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ बन जाकर ॥
धर कर दिगंबर रूप कब, अठवीस गुण पालन करूँ।
दोबीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारण करूँ ॥
तप तपूं द्वादश विधि सुखद तिन, बंध आश्रव परिहरूँ।
अरु रोक नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ ॥३॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, तव निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊँ ॥
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल लहि, चारित्र क्षायिक आचरूँ ॥
आनन्द कन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै अमर कब सुखद दिन, 'जब' दुस्तर भवसागर तिरूँ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्रक—
त्यागी फाइन आर्ट प्रेस
कटरा खुशहालराय दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi